शरीर, निरभिमानता, कर्त्तव्य-निष्ठा, आत्मतोष, मधुर वाणी आदि सद्गुण उन्हे कुल-परम्परा मे ही प्राप्त थे। लोकप्रियता एवं सांस्कृतिक सुरुचि का उनमे अपूर्व संगम था। प्रत्येक मच उनके बहु-आयामी व्यक्तित्व से खिल उठता था। उनकी इन विशेषताओ से श्री, समृद्धि एव सत्कीर्त्ति उनके चरण चूमती रहती थी। उनका जीवन वस्तुत. अनेक प्राचीन अप्रकाशित हस्तलिखित ग्रन्थो के जीर्णोद्धार का प्रामाणिक इतिहास है। सन् १९३५ ई० मे अपनी दिवगता पत्नी की स्मृति मे उन्होने प्राकृत एव जैनविद्या की सेवा के अपने संकल्प को पुन. दुहराया और १२-३-७३ (अपनी मृत्यु-तिथि) तक अपने सकल्प को मूर्त्त रूप देने की दिशा मे निरन्तर सलग्न रहे। फलस्वरूप, जैन शिलालेख-सग्रह, प्र० भा० (सन् १९२८ ई०) सावयधम्म-दोहा (सन् १९३२ ई०), णायकुमारचरिउ (सन् १९३२ ई० तथा सन् १९७२ ई०), पाहुडदोहा (सन् १९३३ ई०), करकडुचरिउ (सन् १९३४ तथा १९६४ ई०), षट्खण्डागम (धवला टीका, भा० १–१६, सन् १९३९–१९५८ ई०), तत्त्वसमुच्चय (सन् १९५२ ई०), मयणपराजयचरिउ (सन् १९६२ ई०), भारतीय जैन संस्कृति के विकास मे जैनधर्म का योगदान (सन् १९६२ ई०), सुगन्धदशमीकथा (सन् १९६६ ई०), कहकोसु (सन् १९६९ ई०), सुदसणचरिउ (सन् १९७० ई०), जसहरचरिउ (डॉ० पी० एल्० वैद्य के साथ, सन् १९७३ ई०), वीरजिणिदचरिउ (सन् १९७५ ई०), महावीर (सन् १९७५ ई०), जिनवाणी (सन् १९७५ ई०) तथा शताधिक मौलिक शोध-निबन्ध लिखकर उन्हें महार्घ्य के रूप मे उन्होंने वाग्देवी के श्रीचरणो मे अर्पित किया।

सन् १९४४ ई० (बी० एच्० यू०, बनारस) तथा सन् १९६६ ई० (अलीगढ) मे उन्होने इस कान्फ्रेन्स के प्राकृत एव जैनविद्या-विभाग की अध्यक्षता की। सन् १९४३ ई० तक इस कान्फ्रेन्स मे प्राकृत एव पालि-विभाग सयुक्त थे तथा वह 'अर्द्धमागधी-विभाग' कहलाता था, किन्तु यह विचित्र संयोग था कि सन् १९४४ ई० से प्राकृत एव जैनविद्या-विभाग स्वतन्त्र हुआ और डॉ० जैन उसके प्रथम अध्यक्ष हुए थे।

डॉ० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये एक ओर जहां प्राकृत एव जैनविद्या के सफल प्राध्यापक एव अनुसन्धाता थे, वहीं वे कुशल वक्ता तथा अप्रकाशित साहित्य के महान् उद्धारक, निपुण सम्पादक तथा निष्पक्ष एव निर्भीक समीक्षक भी। उनका व्यक्तित्व बडा तेजस्वी था। जब वे पाश्चात्य वेशभूषा मे रहते, तब व्यूलर, लॉयमान एव हर्मन याकोबी का स्मरण आ जाता था।

नारिकेल-वृत्तिवाले डॉ० उपाध्ये सत्यान्वेषी, पन्थ के आग्रह से दूर, सकल्प से ससिद्धि तक एकरस कार्यरत रहनेवाले आप्तपुरुष थे। उनकी कार्य-प्रणाली, व्यवस्था-शैली एव अनुशासन-पद्धति सर्वथा मौलिक थी। वे सन् १९४१ ई० मे इस

कान्फ्रेन्स के ११वें अधिवेशन (हैदराबाद सन् १९४१ ई०) मे अर्द्धमागधी-विभाग के अध्यक्ष तथा सन् १९६६ ई० मे अलीगढ-अधिवेशन के प्रधान अध्यक्ष रह चुके थे।

डॉ० उपाध्ये का जन्म महाराष्ट्र के सदलगा (जि० वेलगाँव) ग्राम मे ६-२-१९०६ को हुआ था और मृत्यु ८-१०-१९७५ की रात्रि मे ६।। वजे कोल्हापुर-स्थित उनके अपने आवास मे। उपाधि-प्राप्ति (सन् १९३० ई०) के बाद उनका समग्र जीवन जैनसाहित्य का प्रामाणिक इतिहास है। पचसुत्त (सन् १९३४ ई०), प्रवचनसार (सन् १९३५ ई०), परमात्मप्रकाश और योगसार (सन् १९३७ ई०), वरागचरित (सन् १९३८ ई०), कसवहो (सन् १९४० ई०), वृहत्कथाकोष (सन् १९४३ ई०), धूर्त्ताख्यान (सन् १९४४ ई०), चदलेहा सट्टक (सन् १९४५ ई०), लीलावइकहा (सन् १९४९ ई०), तिलोयपण्णत्ति एव जबूदीवपण्णत्ति (डॉ० जैन के साथ सन् १९५१–५४ ई०), आणदसुदरीकहा (सन् १९५५ ई०), कुवलयमालाकहा (सन् १९५९ ई०), कट्टिगेयाणुवेक्खा (सन् १९६० ई०), आराधनासमुच्चय और योगसारसग्रह (सन् १९६७ ई०), ज्ञानपीठ-पूजाजलि, (प० फूलचन्द्रजी शास्त्री के साथ, सन् १९५६ ई०) गीतवीतराग (सन् १९७१ ई०), पचास्तिकायसार (सम्पादन सन् १९७५ ई०), महावीर युग और जीवन-दर्शन (डॉ० जैन के साथ, सन् १९७५ ई०) प्रभृति ग्रन्थरत्न एव शताधिक शोध-निवन्ध उनके चिरन्तन स्मारक के रूप मे युग-युग तक हमारा मार्ग-दर्शन करते रहेगे।

उक्त दोनो विद्वानो का सम्मिलन यथार्थत उत्तर एव दक्षिण भारत का सम्मिलन था। अपने सयुक्त कार्यो के कारण वे एक दूसरे के पर्यायवाची वन गये थे। शौरसेनी-प्राकृतागमो एव जैनविद्या के विविध अगो के उद्धार के लिए मानो वे पुष्पदन्त एव भूतवलि के रूप मे ही अवतीर्ण हुए थे। माणिकचन्द्र जैन-ग्रन्थमाला, भारतीय ज्ञानपीठ एव जीवराज जैन-ग्रन्थमाला जैसी सस्थाएँ जैनविद्या के भीष्मपितामह स्व० पं० नाथूराम प्रेमी एव उक्त दोनो महारथी विद्वानो के सक्रिय सहयोग से ही विश्व के शोध-संस्थानो एव प्रकाशन-प्रतिष्ठानो मे गुण एव परिमाण दोनों ही दृष्टियो से सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर सकी। उनकी गौरव-प्रतिष्ठा के तथ्यपूर्ण इतिहास मे उनका नाम स्वर्णाक्षरो मे अकित रहेगा। विशिष्ट कालखण्ड के इन सर्वोच्च शलाकापुरुषो के आकस्मिक निधन से न केवल जैनविद्या, अपितु समस्त भारतीय प्राच्यविद्या की अपूरणीय क्षति हुई है।

डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री ने अपनी वेगगामी साहित्यिक गवेषणाओ मे समय की गति को काफी पीछे छोड दिया था। 'हरिभद्र के प्राकृत कथा-साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन' (सन् १९६५ ई०), रिट्ठसमुच्चय, भद्रवाहुसहिता, आचार्य हेमचन्द्र और उनका शब्दानुशासन (सन् १९६३ ई०), अभिनव प्राकृत

व्याकरण (सन् १९६३ ई०), हिन्दी-जैनसाहित्य-परिशीलन (सन् १८५६–७४ ई०), भारतीय ज्योतिष (सन् १९५६ ई०), मगलमन्त्र णमोकार (सन् १९५६ ई०), व्रततिथिनिर्णय (सन् १९५६ ई०), प्राकृत-भाषा और जैनसाहित्य का इतिहास (सन् १९६६ ई०), केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि (सन् १९६१ ई०), गीतिकाव्यानुचिन्तानम् (सन् १९७० ई०), लोकविजययन्त्र (सन् १९७२ ई०), महाकवि भास (सन् १९७२ ई०), अलकारचिन्तामणि (सन् १९७३ ई०) तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य-परम्परा (४ भागो मे, सन् १९७५ ई०) आदि अनेक ग्रन्थरत्न तथा शताधिक मौलिक शोध-निबन्ध उनकी प्रखर प्रतिभा के उज्ज्वल प्रतीक हैं। उनके बहुमुखी व्यक्तित्व ने समय के पूर्व ही विविध सम्मान-पुरस्कार एव धवल कीर्त्ति अर्जित कर ली थी। बिहार मे प्राकृत-भाषा के अध्ययन को विस्तार देनेवालो मे उनका नाम अग्रगण्य माना जायगा। वे इस सम्मेलन के उज्जैन (सन् १९७२ ई०)–अधिवेशन के प्राकृत व जैनविद्या-विभाग के अध्यक्ष रह चुके थे।

डॉ० शास्त्री का जन्म दि० २-१-१९२२ को राजस्थान के बसई-धियाराम (जि० भरतपुर) ग्राम मे हुआ था। वे स्वभाव से सरल, मधुर एव औढरदानी थे। भ० महावीर के २५००वें निर्वाण-महोत्सव के अवसर पर उन्होने 'तीर्थंकर महावीर एव उनकी आचार्य-परम्परा' नामक अर्थवती, मूल्यान्वेषी और शोधपरक कृति चार खण्डो मे तैयार कर भ० महावीर के प्रति अपनी सारस्वत श्रद्धाजलि समर्पित की थी, किन्तु अपनी इस शाश्वत कृति से अर्जित होनेवाले सम्मान को देखे-सुने बिना ही वे दिनाक १०-१-७४ ई० को स्वर्गस्थ हो गये, फलत हमारे अध्ययन एव शोध के दुर्भाग्य की छाया और भी अधिक काली और लम्बी हो गई।

डॉ० गुलाबचन्द्र चौधरी ने अपनी पारिवारिक समृद्धिजन्य सुख-सुविधाओ का परित्याग कर सरस्वती की अर्चना-हेतु स्वत ही कष्टपूर्ण जीवन स्वीकार किया था। उनका दायाँ पैर खराब होने से वे डण्डे के सहारे चलते थे, इसी कारण 'दण्डी' के नाम से भी प्रसिद्ध थे। शरीर से हृष्ट-पुष्ट, निर्भीक एव तेजस्वी मुखमुद्रावाले डॉ० चौधरी आत्माभिमानी एव अपने गर्म-नम्र स्वभाव के लिए प्रसिद्ध थे।

डॉ० चौधरी का जन्म मध्यप्रदेश के सिलौण्डी (जबलपुर) ग्राम मे सन् १९१८ ई० के आसपास हुआ था। जीवन के हर मोड पर उन्हे सघर्षों से जूझना पडा, किन्तु उन्होने कभी पराजय स्वीकार नही की और सामान्य ग्रन्थपाल के पद से उन्नति करते-करते सन् १९७३ ई० मे राजकीय प्राकृत-शोध-सस्थान, वैशाली

का निदेशक पद आयत्त किया। व्याकरण, साहित्य, दर्शन, इतिहास एव सस्कृति का उन्होने तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त किया था। प्राच्य एव मध्यकालीन जैनस्रोतो के आधार पर Political History of Northern India from Jaina Sources (1954), जैनशिलालेख-सग्रह, तृ० भा० की विस्तृत भूमिका (सन् १९५७ ई०), पुराणसारसग्रह, कन्नड-भाषा के ५५ शिलालेख, जैनसाहित्य का बृहद् इतिहास, भा० ६ (सन् १९७६ ई०) आदि विशिष्ट ग्रन्थ एव दर्जनो शोध-निबन्ध लिखकर उन्होने जैनविद्या की महनीय सेवा की। दि० ४-५-१९७४ को उनके दिवगत हो जाने से जैनविद्या का एक मूर्द्धन्य विद्वान् सदा-सदा के लिए अस्त हो गया।

डॉ० प्रबोध बेचर पण्डित दिल्ली-विश्वविद्यालय में भाषाविज्ञान के प्रख्यात प्राध्यापक थे। वे अपने जीवन के कुल ५४ वसन्त ही देख पाये थे। इस अल्पावधि मे ही प्राकृत-भाषा एव भारतीय भाषाविज्ञान-सम्बन्धी मौलिक शोधकार्यो ने उन्हे प्रमुख भाषाविदो की श्रेणी मे ला खडा किया था। उनकी निम्नाकित रचनाएँ बहुचर्चित थी Indo-Aryan Sibilants in Gujarat (1953), प्राकृत-भाषा (सन् १९५४ ई०), गुजराती-व्याकरण मे जाति एव परिमाण (सन् १९६० ई०), position of Indo-Aryan languages in the study of classical languages (1968), गुजराती भाषानु ध्वनि-स्वरूप अने ध्वनि-परिवर्तन (सन् १९६८ ई०), Parametres in Speech-variation in Indian Community in languages and society in India (1969)

मृत्यु-पूर्वकाल मे वे बिना किसी आत्मविज्ञापन के भाषाविज्ञान-सम्बन्धी कुछ नवीन सिद्धान्तो के निर्धारण मे सलग्न थे, किन्तु दिनाक २७-११-१९७५ ई० को वे अकस्मात् ही काल-कवलित हो गये। उनकी इस शोकजनक मृत्यु से भाषा-विज्ञान का क्षेत्र सूना हो गया और निकट भविष्य मे उनके स्थान की पूर्त्ति सम्भव प्रतीत नही होती।

मुनिश्री जिनविजयजी साहित्य की साक्षात् प्रतिमूर्त्ति थे। साहित्य-सेवा के प्रति उनकी निष्ठा का यही छोटा-सा उदाहरण पर्याप्त है कि उन्होने अपने जीवन का पूरा समय एव शक्ति सारस्वत साधना मे समर्पित करने के लिए ही मुनिपद धारण कर लिया था। सस्कृत-प्राकृत-अपभ्रश तथा अनेक आधुनिक भारतीय भाषाओ के साथ-साथ जर्मन-फ्रेंच-इतालवी एव अँगरेजी पर भी उनका अच्छा अधिकार था। सिन्धी जैन ग्रन्थमाला एव राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला से प्रकाशित ऐतिहासिक मूल्य के लगभग २५० ग्रन्थ उनकी अमर कृतियो के रूप मे परिगणनीय है।

मुनिश्री का जन्म सन् १८८८ ई० की २७ जनवरी को हुआ था और मृत्यु सन् १९७५ ई० के ३ जून को। उनके स्वर्गवास से निश्चय ही जैनविद्या-जगत् का एक

कर्मठ महान् तपस्वी उठ गया, जिसकी पूर्ति आगामी समयो मे असम्भव-सी प्रतीत होती है।

डॉ० मोतीचन्द्र, आधुनिक हिन्दी के जनक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के वशधर, दैवी प्रतिभा से सम्पन्न एव प्राच्यभारतीय कलाओ के श्रेष्ठ आचार्य थे। उन्होने जैनकला एव पुरातत्त्व पर महत्त्वपूर्ण शोधकार्य किये। उनकी रचनाओ मे New Documents of Jaina Paintings Jaina miniature Paintings in western India प्रभृति ग्रन्थ जैनविद्या के अलकार माने जा सकते हैं। विगत १७-१२-७४ को उनके दुर्भाग्यपूर्ण निधन से इस क्षेत्र की अपूरणीय क्षति हुई है।

डॉ० नार्मन ब्राऊन जन्म से विदेशी, किन्तु सस्कारो से भारतीय थे। भारतीय प्राच्यविद्या से प्रभावित होकर वे बचपन मे ही भारत आ गये थे तथा वैदिक, बौद्ध एव जैनविद्याओ का गहन अध्ययन करते रहे। इसके साथ-साथ उन्होने हस्तलिखित ग्रन्थो के अध्ययन तथा उनके मूल्याकन मे पर्याप्त समय लगाया। सन् १९२६ ई० मे डॉ० मोरिस ब्लूमफील्ड के निर्देशन मे उन्होने प्राच्यभारतीय सस्कृति पर शोधकार्य किया, जिससे प्रभावित होकर उसी वर्ष पेन्सिलवानिया युनिवर्सिटी ने अपने यहाँ 'इमर्चस प्रोफेसर ऑव सस्कृत' तथा 'इमर्चस ऑव दि साउथ एशिया रीजनल स्टडीज डिपार्टमेण्ट एट दि युनिवर्सिटी ऑव पेंसलवानिया' के चेयरमैन-पद पर नियुक्त किया था। इन पदो पर रहते हुए डॉ० ब्राऊन ने जैन साहित्य, कला एव पुरातत्त्व पर अनेक शोधकार्य किये, जिनमे Early Swetambara Jain Miniatures (1929), Miniature Paintings of the Jaina Kalpa Suttre (1935), Manuscript Illustrations of Uttaradhyayanasuttre (1941), The Jaina Temple Room in the Metropolitan Museum of Art (1949) The Vasanta Vilase (1962) आदि शोधग्रन्थ विशेष महत्त्वपूर्ण हैं।

डॉ० ब्राऊन यूरोपीय एव अमेरिकी देशो मे जैनविद्या के अग्रणी विद्वान् माने जाते थे। दिनाक २१-४-७५ को उनके निधन से जैनविद्या-विभाग की अपूरणीय क्षति हुई है।

इसी प्रकार, प० जीवन्धरजी (इन्दौर), प० माणिकचन्द्रजी (फीरोजाबाद) एव पं० दयाचन्द्रजी (सागर) जैसे जैन दार्शनिक विद्वानो का भी रह-रहकर स्मरण आ रहा है, जिन्होने कर्म-सिद्धान्त तथा व्यवहार एव निश्चय के गहन चिन्तन, तुलनात्मक अध्ययन एव शोधकार्यों मे अपना सारा जीवन समर्पित कर दिया। इनके दुखद निधन से जैनदर्शन के क्षेत्र मे जो रिक्तता आई है, दीर्घकाल तक उसकी पूर्ति की सम्भावना नहीं है।

श्रीमती रमारानी जैन (अध्यक्षा, भारतीय ज्ञानपीठ) प्राकृत एव जैनविद्या के लिए कल्पवृक्ष के समान थी। वाग्देवी के पुण्यचरणो मे भारतीय ज्ञानपीठ को उन्होने एक महार्घ्य के रूप मे समर्पित कर साहित्य के प्रति अपने दायित्व-बोध का सुन्दर परिचय दिया। जैनविद्या-सम्बन्धी लुप्त-विलुप्त एव अनुपलब्ध दुर्लभ ज्ञानराशि का सकलन, उद्धार एव प्रकाशन कर उसे सर्वसुलभ बनाने मे रमाजी के प्रयास साहित्यक इतिहास मे एक गौरवपूर्ण अध्याय के रूप मे चिरस्मरणीय रहेगे। प्राच्य भारतीय विद्या के उन्नयन-हेतु निरन्तर चिन्तनशील, अनुसन्धाताओ के प्रति निश्छल गहरी ममता तथा जैनविद्या के प्रति गहरी आस्था के कारण वे उनके सरक्षण की प्रतीक बन गई थी। दिनाक २२-७-७५ को उनके अप्रत्याशित निधन से प्राच्यविद्या-जगत् ने सचमुच ही अपना एक सर्वश्रेष्ठ सरक्षक खो दिया।

जैनविद्या के सरक्षको की श्रेणी मे **श्रीबाबू जुगमन्दिरदास जैन** को भी विस्मृत नही किया जा सकता। प्रारम्भ मे वे ब्रिटिश-शासन के विरोध मे प्रमुख क्रान्तिकारी-दल के नेता थे और अपनी जन्मभूमि से उन्हे फरार (भूमिगत) होना पडा था। उसी समय वे कलकत्ता पहुँचे। सयोग से रवीन्द्र-साहित्य से प्रभावित हो गये, किन्तु अपने तथा स्वतन्त्रता-सेनानियो के परिवारो के भरण-पोषण के लिए उन्हे विवश होकर व्यवसाय मे फँस जाना पडा। वे अपने मृत्यु-दिवस, २४-६-१९७३ तक निराश्रित एव असहाय स्वतन्त्रता-सेनानियो का भरण-पोषण तो करते ही रहे, उत्तर एव पूर्व भारत के दर्जनो जैनशोध-सस्थानो के वे कर्मठ एव सक्रिय कार्यकर्त्ता भी रहे। अनेक प्राध्यापको एव शोधकर्त्ताओ को उन्होने सहायता दी। प्राकृत एव जैनविद्या के उद्धार तथा उसकी प्रगति के लिए उन्होने जो कुछ किया, उसका शताश भी उन्होने प्रकाश मे नही आने दिया। जैनविद्या के इस आधुनिक भामाशाह के निधन से सचमुच ही प्राच्यविद्या का एक महान् सरक्षक छिन गया।

उक्त कृतनिश्चय व्यक्तित्वो का हम बार-बार स्मरण करते हैं। उनके अभाव मे आज हमारा यह विभाग श्रीविहीन-सा प्रतीत हो रहा है। हम प्राकृत एव जैनविद्या-विभाग की ओर से उनके प्रति नतमस्तक होकर श्रद्धाजलि समर्पित करते हैं तथा उनके क्षेत्र मे कार्य करनेवाले समस्त धीमानो एव श्रीमानो से विनम्र प्रार्थना करते हैं कि वे उनके कार्यो को आगे बढाने हेतु आज दृढ सकल्प ले।

° ° °

हम कर्नाटक की इस तपोभूमि के कण-कण को भी अपनी श्रद्धा समर्पित करते हैं, जिसने अरिहनेमि जैसे महामहिम शिल्पकार, विमल, नागार्जुन, जयबन्धु,

दुर्विनीत एवं श्रीविजय जैसे आद्य गद्यकार, समन्तभद्र (दूसरी शती) एवं देवनन्दि पूज्यपाद (५वीं शती) जैसे अध्यात्मसाहित्य के प्रणेता एवं महान् टीकाकार, आदिपम्प (सन् ९४१ ई०) जैसे आद्य चम्पूकार तथा काव्यसुधा-धारा को प्रवाहित करनेवाले Mytho-Historian; पोन्न (लगभग सन् ९५० ई०), रन्न (सन् ९९३ ई०), पम्प (लगभग सन् ११०० ई०), कर्णपार्य (लगभग सन् ११४० ई०)' अग्गल (सन् ११८९ ई०), आचण्ण (सन् ११९५ ई०) एवं दोड्डय्य (सन् १५५० ई०) जैसे पुराणेतिहासकार, मंगरस (सन् १५०८ ई०), कुमुदेन्दु (लगभग सन् १२७५ ई०), भास्कर (सन् १४२४ ई०), कल्याणकीर्त्ति (सन् १४३९ ई०) एवं कोटेश्वर (सन् १५०० ई०) जैसे षट्पदि-साहित्यकार, रत्नाकरवर्णी (सन् १५५७ ई०); पद्मनाभ (लगभग सन् १६८० ई०) एवं चन्द्रम् (सन् १६०५ ई०) जैसे सांगत्य-साहित्यकारों को जन्म दिया। इसी प्रकार, आयुर्वेद, व्याकरण, ज्योतिष, गणित, सूपशास्त्र, कामशास्त्र आदि के प्रणेता और कन्नड-भाषा एवं जैनसाहित्य की विजय-दुन्दुभि का नाद करनेवाले उन सभी आचार्यों एवं ग्रन्थकारों एवं उन्हें प्राश्रय, सरक्षण, प्रेरणा एवं प्रोत्साहन प्रदान करनेवाले उन समस्त साहित्य-रसिक गंग, राष्ट्रकूट, चालुक्य एवं होयसलवंशी प्रतापी नरेशों को भी हमारे श्रद्धा-सुमन समर्पित हैं, जिनके कारण कन्नड-भाषा एवं जैन साहित्य का चरम विकास हुआ। गुण एवं परिमाण दोनों ही दृष्टियों से भारतीय वाङ्मय के इतिहास में उनका नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा। यह एक विचित्र संयोग है कि उक्त साहित्यकार जैनधर्मानुयायी थे, इसी कारण कन्नड-साहित्य का आदिकाल जैनग्रन्थ एवं ग्रन्थकारों का पर्यायवाची बन गया है। हमारा जैनविद्या-विभाग उक्त कृतियों एवं कृतिकारों के कारण आज बड़े ही गौरव का अनुभव कर रहा है।

कर्नाटक-प्रदेश के उन पुण्यतीर्थों के प्रति भी हम श्रद्धावनत हैं, जहाँ 'गुरुणां गुरु' आचार्य भद्रबाहु एवं जटासिंहनन्दि जैसे अनेकानेक साधकों की समाधियाँ यहाँ के जीवन एवं साहित्य में अपूर्व सामंजस्य स्थापित कर कर्नाटकवासियों के हृदयों में निरन्तर संगीत भरा करती हैं। कवि नृपतुंग (लगभग सन् ८५० ई०) का यह कथन यथार्थ ही है :

In all the circle of the earth
No fairer land you 'll find,
Than that where rich sweet Kannada
Voices the people's mind

The people of that land are skilled
To speak in rhythmic tone
And quick to grasp a poet's thought
So kindered to their own
Not students only, but the folk
Untutored in the schools
By instincts use and understand
The strict poetic rules

[1/36 39]

o o o

प्राच्य एव पाश्चात्य भाषाविदो ने अपने गम्भीर अध्ययन एव शोधकार्यों के अनन्तर यह सिद्ध किया है कि प्राकृत-भाषा ईसा-पूर्व की अनेक सदियो पूर्व की वह जनभाषा है, जिसे आज की भाषा मे 'राष्ट्रभाषा' की सज्ञा प्राप्त है। भगवान् बुद्ध एवं महावीर ने उसकी क्षमता, योग्यता एव लोकप्रियता से प्रभावित होकर उसे अपने उपदेशो का माध्यम स्वीकृत किया था और इस प्रकार भाषाई क्षेत्र मे उन्होंने अपनी जनतन्त्रात्मक मनोवृत्ति का सर्वप्रथम आदर्श प्रस्तुत किया था। बुद्ध एवं महावीर के निर्वाण के कुछ ही वर्षों बाद उनसे सम्बन्ध रखनेवाले दो शिलालेख मिले हैं, जो प्राकृत-भाषा मे ही हैं। प्रथम अभिलेख बस्ती जिले (उत्तरप्रदेश) के पिपरहवा ग्राम मे मिला है, जो स्थानीय प्राकृत-भाषा मे भ० बुद्ध की सम्भवत ४०वें निर्वाण-वर्ष की पुण्यस्मृति मे उनके भक्तो द्वारा उट्टकित कराया गया था। दूसरा शिलालेख अजमेर (राजस्थान) से लगभग ४० किलोमीटर दूर बारली ग्राम मे प्राप्त हुआ है। **म० म० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा** के मतानुसार जैन भक्तो द्वारा महावीर की ८४वीं पुण्यतिथि की स्मृति मे इसे उत्कीर्ण कराया गया था। क्योकि, उसमे भ० महावीर के नाम के साथ वीरनिर्वाण-सवत् ८४ का उल्लेख स्पष्ट है। तत्पश्चात्, प्रियदर्शी अशोक एव खारवेल के प्राकृत-शिलालेखों मे तत्कालीन प्रचलित भारतव्यापी जनभाषा प्राकृत के विविध रूप उपलब्ध होते हैं। प्राकृतो की यह लोकप्रिय परम्परा महाकवि शूद्रक, अश्वघोष, भास एव कालिदास के सस्कृत-नाटको मे भी प्राप्त है। उन्होंने अपने-अपने नाटको मे उसे प्रसगानुकूल उपयुक्त स्थान प्रदान किया है।

महाकवि गुणाढ्य-कृत 'वड्ढकहा' नामक ग्रन्थ पैशाची प्राकृत मे लिखा गया था, जो किन्हीं अज्ञात कारणो से नष्ट हो गया। इसकी प्रशसा बाण, सुबन्धु एव दण्डी जैसे सूक्ष्मान्वेषी महाकवियो ने की तथा जिसकी परम्परा को सघदासगणि एव धर्मसेन ने प्राकृतभाषात्मक 'वसुदेवहिण्डी' तथा बुधस्वामिन्, सोमदेव एव

क्षेमेन्द्र ने अनुवर्ती संस्कृत-कथाकाव्यों के माध्यम में जीवित रखा है। यह 'वड्डकहा' परवर्ती भारतीय कथा-साहित्य का ही नहीं, अपितु आधुनिक अनेक एशियाई देशों की कथा का भी स्रोत बना रहा। महाकवि राजशेखर ने लिखा है कि महाकवि हाल-सातवाहन के राजमहलों में प्राकृत-भाषा का ही प्रयोग होता था। हाल ने स्वयं भी तत्कालीन प्रचलित अनेक सरस-प्राकृत गाथाओं का संकलन कर उनमें से ७०० गाथा-प्रमाण 'गाहासत्तसई' नामक एक मुक्तक-काव्य का सर्वप्रथम सम्पादन किया था, जिसमें राजमहलों से झोपड़ों तक गुनगुनाये जानेवाले अनेक रससिक्त एवं मार्मिक लोकगीत प्रस्तुत हैं। 'गाहासत्तसई' की इस शैली से प्रभावित होकर उसके अनुकरण पर गोवर्धनाचार्य ने 'आर्यासप्तशती' नामक संस्कृत में एक मुक्तक-काव्य भी लिखा। तत्पश्चात् प्रौढ महाकाव्य-शैली में लिखित सेतुबन्ध, गउडवहो, लीलावइ प्रभृति काव्य भी अनुपम हैं। प्राकृत-साहित्य की यह परम्परा विकसनशील रही। इसमें संस्कृत-नाट्यशास्त्रियों द्वारा स्वीकृत नाटकों की प्राकृत-विधा सट्टकों में भी कर्पूरमंजरी, रम्भामंजरी, चन्दलेहा जैसे कई सट्टकों का प्रणयन हुआ। महाकवि राजशेखर ने संस्कृत में नाटक न लिखकर प्राकृत में ही सट्टक की रचना क्यों की तथा संस्कृत एवं प्राकृत में क्या अन्तर है, इसकी चर्चा करते हुए लिखा है :

परुसा सक्किय-बंधा पाउदबंधो वि होइ सुउमारो।
पुरिस-महिलाण जेत्तिअमिहंतरं तेत्तियमिमाण॥

अर्थात्, संस्कृत-काव्य परुष—कर्कश-कठोर होते हैं और प्राकृत-काव्य सुकुमार सरस। पुरुष एवं महिलाओं में जितना अन्तर है, उतना ही संस्कृत एवं प्राकृत-काव्यरचनाओं में है।

आनन्दवर्द्धन, मम्मट, विश्वनाथ जैसे संस्कृत के लक्षणशास्त्रियों ने भी अपनी स्वीकृत साहित्यिक परिभाषाओं एवं लक्षणों के समर्थन में अनेक प्राकृत-पद्यों को उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत किया है। इसका मूल कारण यही है कि प्राकृत-भाषा एवं उसके पद्यों में पाठकों को भावाभिभूत एवं मन्त्रमुग्ध कर देने की अद्भुत क्षमता थी। इन उल्लेखों से यह स्पष्ट विदित होता है कि उक्त कवियों के समय तक यद्यपि संस्कृत एक प्रमुख साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित थी, तथापि प्राकृत के पठन-पाठन एवं अध्ययन की तत्कालीन लोकप्रियता को भी अस्वीकृत नहीं किया जा सकता।

पूर्व में कहा जा चुका है कि भ० बुद्ध एवं महावीर ने तत्कालीन प्रचलित जनभाषा को अपने उपदेशों का माध्यम स्वीकृत किया था। लोकहित की दृष्टि से चूँकि उन्होंने राज्य-वैभव को ठुकरा दिया था तथा त्यागमय जीवन धारण कर

उन्होंने जनहित के उपदेश जनभाषा मे ही प्रदान किये थे, इस कारण वे सच्चे लोक-नायक के रूप मे प्रसिद्ध हुए। ये उपदेश क्रमश त्रिपिटक एवं अर्द्धमागधी-प्राकृतागम के नाम से प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि सुप्रसिद्ध तार्किक विद्वान् सिद्धसेन दिवाकर ने एक वार समस्त अर्द्धमागधी-प्राकृतागमो को सस्कृत मे रूपान्तरित करने की योजना वनाई थी, किन्तु इसे सघविरोधी अथवा जनहित-विरोधी कार्य समझकर संघपति ने उन्हे दण्डित किया था। एक अनुश्रुति के अनुसार, भ० वुद्ध के कुछ अनुयायियो ने भी जब उनके उपदेशो को सस्कृत मे रूपान्तरित करने की आज्ञा मांगी, तव भ० वुद्ध ने उसे अस्वीकार करते हुए स्पष्ट कहा था कि 'जनता को स्वयं अपनी ही भाषा मे मेरे उपदेशो को समझने दिया जाय।' इन अनुश्रुतियो से तत्कालीन नेताओ एव सामान्य जनता का जनभाषा के प्रति अगाव प्रेम ध्वनित होता है।

उक्त तथ्यो से हमने देखा कि जैनेतर कवियो ने प्रारम्भ से ही प्राकृत-भाषा को जिस प्रकार अपनाया, उसी प्रकार जैनो ने भी उसे समुचित आदर प्रदान किया। इस सन्दर्भ मे, यह कथन यथार्थ है कि समस्त प्राचीन जैनागम एव पश्चाद्वर्त्ती अधिकाश जैनसाहित्य प्राकृत-भाषा मे निवद्ध किया गया, किन्तु क्या इसका यह अर्थ हुआ कि प्राकृत-भाषा जैनो की भाषा हो गई? अथवा, वह एक सम्प्रदाय-विशेष के लिए सुरक्षित हो गई? इसी प्रकार, क्या वैदिक साहित्य की भाषा संस्कृत एव त्रिपिटको की भाषा पालि, क्रमश ब्राह्मणो एव वौद्धो के लिए सुरक्षित हो गई? मेरी दृष्टि से ये विचार युक्तिसगत नही, क्योकि यदि विचाराभिव्यक्ति के माध्यमो के वर्गीकरण की यही पद्धति मानी गई, तो कन्नड-भाषा को भी जैनभाषा कहना पडेगा, क्योकि उसका आद्य एव अधिकाश साहित्य जैनाचार्यो द्वारा ही प्रणीत है। सयोगवश कन्नड-भाषा एव साहित्य का इतिहास वस्तुत. जैन-इतिहास ही है। इतना होने पर भी हम उसे एक वर्ग या सम्प्रदाय-विशेष की सीमा मे वांधकर उसकी गरिमा को मूल्यहीन नही कर सकते। इसी प्रकार, सस्कृत, अपभ्रश, गुजराती, राजस्थानी, तमिल आदि मे भी जैनकवियो ने पर्याप्त लिखा है, उनका भी वर्गीकरण कैसे किया जायगा? यह नही भूलना चाहिए कि भाषा किसी सम्प्रदाय-विशेष के लिए नही वनती, वह तो विचारो के सम्प्रेषण का एक सशक्त माध्यम-मात्र है। जिसके आधार पर विचारो को अभिव्यक्ति मिलती है। लोक-प्रचलित भाषा पर सभी का उसी प्रकार अधिकार होता है, जिस प्रकार सूर्य एव चन्द्रकिरणो, प्रवहमाण वायु एव मेघ-जल पर प्राणिमात्र का। अत, किसी विशेष विचारधारा अथवा सम्प्रदाय-विशेष के साथ किसी भाषा-विशेष को वांध देना वडा हानिकर है। इस प्रकार की पद्धति मे, भले ही उक्ति-सौकर्य या उल्लेख-सौकर्य की आरम्भिक भावना रही हो, किन्तु उसका प्रभाव अवश्य ही विपरीत पडा है।

संस्कृत के साथ वैदिक धर्म-दर्शन, पालि के साथ बौद्ध धर्म-दर्शन एवं प्राकृत के साथ जैन धर्म-दर्शन का नाम जोड देने से ऐसा प्रतीत होता है, मानो उन-उन भाषाओं का उन-उन सम्प्रदायों के लिए आरक्षण कर दिया गया हो। भले ही, इससे संस्कृत एवं पालि-भाषाओं को क्षति न पहुँची हो, क्योंकि संस्कृत को वैदिक धर्म की भाषा घोषित कर उसे एक बहुमत की श्रद्धा-भक्ति प्राप्त हो गई। उसी प्रकार पालि को बौद्धधर्म की भाषा घोषित कर उसे भारतीय एवं विश्व के समस्त बौद्ध देशों की सहानुभूति प्राप्त हो गई, किन्तु प्राकृत-भाषा एक अवशिष्ट अल्पमत-वालों तक ही सिमटकर रह गई। उसे जैनों की भाषा कहकर उसके साहित्य को साम्प्रदायिक मान लिया गया। वेद, उपनिषद् और पुराणों के विषय जहाँ राष्ट्रिय कोटि में समाहित हैं और त्रिपिटकों के विषय भी लगभग उसी कोटि मे आते हैं, वहाँ प्राकृत-भाषा और जैन-साहित्य एक साम्प्रदायिक कोटि मे आ गया। होना यह चाहिए था कि विविध सम्प्रदायों के धर्म-दर्शन को भाषाओं के साथ न बाँधकर भारतीय धर्म एवं दर्शन के साथ उल्लिखित किया जाता, तो अधिक तर्कसंगत होता। ऐसा न हो पाने से समन्वय के स्थान पर बिखराव की भावना को बल मिला है।

प्राकृत-भाषा की अवरुद्ध गति की व्यथा का अनुभव देश-विदेश के प्राच्यविद्या-विशारदों ने किया और १९वीं सदी के प्रारम्भ से उस दिशा मे उत्साहवर्द्धक शोध-कार्य प्रारम्भ हुए। बूलर (Buhlar), वेबर Weber), लस्सेन (Lessen), कॉवेल (Cowel), पिशल (Pischel), ग्रियर्सन (Grierson), हुल्श (Hultzsch), याकोबी (Jecobi) प्रभृति पाश्चात्य एवं डॉ० भण्डारकर, डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी, डॉ० पी० डी० गुणे, डॉ० तारापोरवाला, डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, डॉ० पी० एल्० वैद्य प्रभृति भारतीय भाषाविदों ने स्पष्ट स्वरों मे यह घोषणा की कि आधुनिक भारतीय भाषाओं के उद्भव एवं विकास तथा उनके भाषावैज्ञानिक विश्लेषण के लिए प्राकृत एवं अपभ्रंश-भाषाओं का अध्ययन-अध्यापन नितान्त आवश्यक है। सम्भवत, इन्हीं विचारों से प्रभावित होकर विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा सर आशुतोष मुखर्जी ने एवं पं० मोतीलाल नेहरू की प्रेरणा से पं० मदन-मोहन मालवीय ने अपने-अपने विश्वविद्यालयों मे प्राकृत-भाषा एवं जैनविद्या के अध्ययन-केन्द्रों की स्थापना की। इस प्रकार के अध्ययन एवं शोध-केन्द्रों की स्थापना बडौदा, पूना, बम्बई, अहमदाबाद, लाहौर, त्रिवेन्द्रम् एवं मैसूर मे भी की गई। सर आशुतोष मुखर्जी (तत्कालीन कुलपति, कलकत्ता-वि० वि०) की प्रेरणा से ही कलकत्ता-विश्व-विद्यालय के प्राकृत-प्राध्यापक हरगोविन्ददास त्रिकम सेठ ने सर्वप्रथम 'पाइय-सद्दमहण्णवो' जैसे कोश-ग्रन्थ का सम्पादन किया और महात्मा गान्धी की प्रेरणा से मुनि जिनविजयजी एवं पं० बेचरदास दोशी ने तथा डॉ० ए० सी० वुलनर की प्रेरणा से

डॉ० बनारसीदास और महाराष्ट्र मे डॉ० पी० एल्० वैद्य प्रभृति विद्वानो ने छात्रोपयोगी अनेक पाठ्यग्रन्थो की रचना की। इस प्रकार, बीसवी सदी का प्रारम्भ प्राकृत-भाषाओ के उन्नयन के लिए उत्साहवर्द्धक सिद्ध हुआ, इसमे सन्देह नही। क्योकि उनमे एक ओर शिक्षा-सस्थाओ मे पाठ्यक्रमो की व्यवस्था हुई और दूसरी ओर जीर्ण-शीर्ण नष्टप्राय प्राचीन हस्तलिखित अप्रकाशित ग्रन्थो का सूचीकरण भी प्रारम्भ किया गया। इस दिशा मे डॉ० कीलहॉर्न, बूलर, भण्डारकर, वेल्वलकर, रायबहादुर हीरालाल प्रभृति ने देश के प्राच्य ग्रन्थागारो मे सुरक्षित हस्तप्रतियो का अध्ययन एव मूल्याकन कर उनकी वर्गीकृत विवरणात्मक ग्रन्थसूचियाँ प्रकाशित की। इनके अध्ययन से यह निष्कर्ष निकला कि भारतीय एव एशियाई इतिहास, सस्कृति, दर्शन, समाजशास्त्र, पुरातत्त्व एव भाषाविज्ञान के पौराणिक एव क्रमबद्ध ज्ञान के लिए प्राकृत-भाषा एवं जैनविद्या का गहन एव तुलनात्मक अध्ययन नितान्त आवश्यक है। इन ग्रन्थसूचियो के आधार पर भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इस्टीट्यूट, पूना, अडयार लायब्रेरी, त्रिवेन्द्रम्, गायकवाड ओरियण्टल रिसर्च इस्टीट्यूट, बडौदा, रॉयल एशियाटिक सोसायटी, बगाल, कलकत्ता, भारतीय विद्या-भवन, बम्बई, माणिकचन्द्र दिगम्बर जैनग्रन्थमाला, बम्बई, आगमोदय समिति, सूरत, देवचन्द्र लालभाई पुस्तकोद्धार फण्ड, बम्बई, मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला (भारतीय ज्ञानपीठ), दिल्ली, जीवराज जैन ग्रन्थमाला, शोलापुर, रायचन्द्र जैन शास्त्रमाला, बम्बई, जैन सिद्धान्त भवन, आरा आदि सस्थाओ ने अनेक महत्वपूर्ण हस्तप्रतियो के प्रकाशन किये और मुनिश्री चतुरविजयजी, पुण्यविजयजी, जिनविजयजी, पं० भगवानलाल इन्द्रजी, ए० बी० ध्रुव, सतीशचन्द्र विद्याभूषण, पं० नाथूराम प्रेमी, प० जुगलकिशोर मुख्तार, बैरिस्टर चम्पतराय, जुगमन्दरलाल जैनी, अजित प्रसाद जैन, कुमार देवेन्द्र (आरा), डॉ० शहीदुल्ला (ढाका), पं० सुखलालजी सघवी, पूरणचन्द नाहर, डॉ० ए० एन्० उपाध्ये, डॉ० हीरालाल जैन, स्व० डॉ० महेन्द्रकुमार, डॉ० नथमल टाटिया, प० दलसुखभाई मालवणिया, डॉ० सात्करी मुखर्जी, पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्री, पं० फूलचन्द्रजी शास्त्री तथा हर्मन याकोबी प्रभृति देश-विदेश के कई विद्वानो ने इस दिशा मे बडी ही निष्ठापूर्वक कार्य किये। इनके शोधपरक प्राथमिक प्रकाशन वस्तुत प्राकृत-भाषा एव जैनविद्या-रूपी भव्य भवन के लिए आधारशिला बने।

उक्त प्रगति पर्याप्त प्रेरणप्रद रही, इसमे सन्देह नही, किन्तु अन्य ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र मे जिस तीव्रगति से कार्य हो रहा है, उसकी अपेक्षा प्राकृत-भाषा एव जैनविद्या के अध्ययन एव शोध की प्रगति नगण्य है। इसका मूल कारण यह है कि इस दिशा मे न तो केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकारो का ध्यान है और न विश्वविद्यालयो का ही। पूर्व एव उत्तर भारत के ५-७ इने-गिने विश्वविद्यालयो या शोध-सस्थानो

को छोडकर इस विषय के पठन-पाठन की आवश्यकता का अनुभव ही नही किया जाता। कुछ समय पूर्व पजाबी विश्वविद्यालय ने भारतीय तुलनात्मक धर्मविज्ञान-विभाग की स्थापना तथा उसमे एक जैनधर्माध्यापक की नियुक्ति की है। यह सचमुच ही बडी प्रसन्नता का विषय है और पजाबी वि० वि० इसके लिए बधाई का पात्र है। किन्तु, हम पजाबी वि० वि० का ध्यान २०वी सदी के आरम्भ की ओर आकृष्ट करना चाहते हैं। जब भारत का विभाजन नहीं हुआ था, तब पजाब वि० वि० (लाहौर) मे डॉ० ए० सी० वूलनर एव डॉ० बनारसीदास ने वहाँ प्राकृत-भाषा एव जैनविद्या के पठन-पाठन की व्यवस्था ही न की थी, अपितु Introduction to Prakrit तथा Ardhamagadhi Reader जैसे पाठ्य-ग्रन्थ तथा अनेक शोध-निबन्ध लिखकर अन्य शिक्षा-सस्थाओ का भी मार्गदर्शन किया था। उन्होने स्थानीय बोलियो का प्राकृतो के साथ तुलनात्मक अध्ययन कर भाषाविज्ञान के क्षेत्र मे भी अनुकरणीय कार्य किये थे। अत, पजाबी वि० वि० को चाहिए कि वह अपने उक्त धर्मविज्ञान-विभाग मे पुरातन परम्परा को ध्यान मे रखते हुए प्राकृत-अपभ्रश भाषा के पठन-पाठन की भी व्यवस्था करे, जिससे पजाब एव उसके आसपास की स्थानीय भाषाओ के भाषावैज्ञानिक अध्ययन के लिए बढावा मिल सके।

राजस्थान मे जयपुर एव उदयपुर, दक्षिण मे पूना एव कर्नाटक, मध्यप्रदेश मे उज्जैन एव इन्दौर के विश्वविद्यालयो ने भी उक्तविषयक अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था करने की घोषणा की है। इस सम्मेलन का प्राकृत-भाषा एव जैनविद्या-विभाग उक्त विश्वविद्यालयो के माननीय अधिकारियो के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता है और विश्वास करता है कि उनके सचालन-हेतु वे प्राथमिक उदारता एव सहानुभूति का भाव अवश्य ही रखेंगे।

एक ओर जहाँ उक्त विश्वविद्यालयो ने अपने यहाँ प्राकृत एव जैनविद्या विभाग की स्थापना की, वही कुछ ऐसे शिक्षा-सस्थान भी हैं, जहाँ उक्तविषयक अध्ययन शिथिल अथवा बन्द कर दिया गया, ऐसा सुना गया है। इसकी निश्चित जानकारी न मिल पाने से कुछ विशेष कह पाना सम्भव नही। किन्तु, यदि यथार्थत ऐसा हुआ या होने जा रहा है, तो यह बडे दुर्भाग्य का ही विषय होगा। विषय की उपादेयता का विचार कर उसे हर प्रकार से बढावा देने का प्रयत्न होना ही चाहिए।

विदेशों मे प्राकृत एव जैनविद्या के अध्ययन की स्थिति :

प्राकृत एव जैनविद्या को आगे बढाने मे पाश्चात्त्य विद्वानो का क्या योगदान रहा, इसकी सक्षिप्त चर्चा पीछे हो चुकी है। उनके विगत एव वर्त्तमान शोधकार्यों को देखकर उनके असीम धैर्य, उत्साह, अथक और अखण्ड परिश्रम के साथ विषय

के प्रति उनकी समर्पित वृत्ति पर आश्चर्य होता हैं। पिछले समय दिनांक २६-७-७६ को हमारे निवास पर एक ऐसे जर्मन-विद्वान् आये, जिनका नाम तो सुना था, किन्तु न तो उन्हे कभी देखा था और न यह कल्पना ही की थी कि वे मुझ जैसे अल्पज्ञ व्यक्ति से आरा जैसे छोटे नगर मे मिलने चले आयेंगे। उनका नाम था Dr. Gustav Roth उनसे मिलकर मेरे आनन्द का पारावार न रहा। वातचीत के क्रम से यह जानकर वडी प्रसन्नता हुई कि वे Gottingen university (west Germany) के सस्कृत-प्राकृत-विभाग के योजनानुसार एक ग्रन्थ लिख रहे हैं और उसके लिए सन्दर्भ-सामग्री के संकलन हेतु-भारत आये हैं। उन्होने वताया कि पश्चिम जर्मनी मे प्राकृत एव जैनविद्या के पठन-पाठन एव शोध-सम्वन्धी अनेक केन्द्र हैं तथा इनके प्रति छात्रो मे भी वडी अभिरुचि है। उनके अनुसार, Hamburg, Gottingen Mainz Neckargemund, Heidelberg, Bonn, Koln, Kiel, Saarbrucken, Munchen, Freiburg, Tubingen तथा Berlin मे प्राकृत एवं जैनविद्या के तुलनात्मक अध्ययन एव शोधकार्यो पर काफी ध्यान दिया जा रहा है।

सन् १६७३ ई० मे Federal Republic of Germany के दिल्ली-स्थित राजदूतावास के सास्कृतिक विभाग ने 'German Scholars on India' नामक ४२४ पृष्ठो का एक ग्रन्थ प्रकाशित किया है, जिसमे ३१ जर्मन विद्वानो के शोध-निवन्धो का सकलन हैं। भारतीय विद्या पर शोधकार्यों का यह एक प्रामाणिक सन्दर्भ-ग्रन्थ है। सक्षेप मे, यह कहा जा सकता है कि जर्मनी ने इस ग्रन्थ के माध्यम से भारतीय विद्या के प्रति अपनी श्रद्धा-भक्ति एव गहन अभिरुचि प्रदर्शित की है। इसमे सकलित शोध-निवन्धो मे से What were the Contents of the DRISHTIVADA (दृष्टिवाद), (by L Alsdorf), The similies of the entrusted Five-Rice-Grains and their Parallels (by Dr Gustav Roth) विशेष रूप से पठनीय हैं। क्या ही अच्छा हो कि भारत-स्थित जर्मन-दूतावास प्राकृत-भाषा एव जैनविद्या पर जर्मन-विद्वानो द्वारा किये गये समस्त शोधकार्यों का भी स्वतन्त्र रूप से एक साथ प्रकाशन करे, तो इस विषय के शोधार्थियो को सहायता एव प्रेरणा तो मिलेगी ही, प्राकृत-भाषा एव जैनविद्या के क्रमिक इतिहास-लेखन मे भी वह सन्दर्भ-ग्रन्थ के रूप मे सहायक होगा।

इस समय पश्चिम-जर्मनी मे अनेक महत्वपूर्ण शोध एव प्रकाशन-कार्य हो रहे हैं। पिछले वर्ष सन् १६७५ ई० मे वहाँ से 'Catalogue of the Jaina Manuscripts strasbourg नामक एक विशिष्ट ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है, जिसका सकलन, सम्पादन एव मूल्यांकन डॉ० चन्द्रभाल त्रिपाठी ने किया है। वेल्जियम मे

मुद्रित इस ग्रन्थ मे ४२३ पृष्ठ, ७ चित्र एव एक मानचित्र हैं। यह तीन खण्डो में विभक्त है। प्रथम भाग मे जैन हस्तप्रतियो का वैज्ञानिक पद्धति से विशद परिचय प्रस्तुत किया गया है। द्वितीय खण्ड मे, दिगम्बर एव श्वेताम्बर-साहित्य का वर्गीकरण एव उनका विस्तृत परिचय तथा अज्ञात फुटकर साहित्य का परिचय एव अन्तिम खण्ड मे (१० परिशिष्टो मे) हस्तप्रतियो के रचनाकाल, लिपिकाल, भारतीय सवत्सरो के लिए सकेत-चिह्न, लिपिकार-प्रशस्तियो आदि को प्रस्तुत किया गया है। जैन हस्तप्रतियों पर शोधकार्य करनेवाले अनुसन्धित्सु वर्गों से जिस अभाव का अनुभव कर रहे थे, डॉ० त्रिपाठी ने उसे दूर कर इस विद्या का बडा उपकार किया है। हस्तप्रतियो पर कार्य करना श्रमसाध्य है। उक्त ग्रन्थ डॉ० त्रिपाठी के गहन अध्ययन एव चिन्तन के साथ-साथ उनके असीम धैर्य, सत्साहस तथा अथक एव अखण्ड परिश्रम का प्रतीक है। हस्तप्रतियो के गूढ रहस्यो के उद्घाटन में उनकी लेखनी ने अभूतपूर्व प्रतिभा का प्रदर्शन किया है। इस ग्रन्थसूची मे मात्र स्ट्रासवर्ग मे सुरक्षित हस्तप्रतियो का ही परिचय प्रस्तुत किया गया है। आशा है, इसी पद्धति पर जर्मनी में अन्यत्र सुरक्षित हस्तप्रतियो का भी परिचय निकट भविष्य मे प्रकाशित किया जायगा।

अन्य प्रकाशनो मे Prospectus of a New-Verse Concordance (by Dr K Bruhn and C B. Tripathi) महत्त्वपूर्ण है। इसमे अर्द्धमागधी एव शौरसेनी-प्राकृतागमो तथा उनकी कुछ सस्कृत-टीकाओ मे उपलब्ध गाथाओ और आर्या छन्दो का अकारादि-क्रम से सकलन किया गया है। इन गाथाओ की सख्या ६५ से ७५ सहस्र के मध्य है। इस ग्रन्थ की प्रस्तावना के अनुसार, इसका सम्पादन मई, सन् १९६८ ई० मे शिवाजी-विश्वविद्यालय, कोल्हापुर मे सम्पन्न प्राकृत-सेमिनार के एक प्रस्ताव के अनुसार किया गया है। इसका पूर्ण प्रकाशन सन् १९७७ ई० तक हो जाने की सम्भावना है।

Dr L Alsdorf जर्मनी में प्राकृत-अपभ्रश-भाषा एव जैनविद्या के वरिष्ठ आचार्य माने जाते हैं। कुछ समय पूर्व उनका 'NIKSHEPA a Jaina Contribution to Scholastic Methodology' (Journal of O I Baroda, Vol XXI, No. 4) प्रकाशित हुआ है। उनके निर्देशन मे Sri Kiyoaki Okuda नामक एक जापानी शोधार्थी ने 'Digambara dogmatics the 5th Chapter of VATTAKERA's MULACHARA' विषय पर शोधकार्य भी किया है।

Dr. Gustav Roth वहाँ के दूसरे वरिष्ठ विद्वान् हैं, जिन्होने जैन-विद्या पर गम्भीर शोधकार्य किये हैं। Malli Jnata (Doctoral Thesis) के

बाद उनका एक शोध-निबन्ध 'What the Jaina Sources can Teach Us' (Journal of O I Baroda, Vol. XXIV, No 1-2) प्रकाशित हुआ है, जिसमे प्राचीन जैनसाहित्य को भारतीय इतिहास एव सस्कृति के अनेक स्रोतो का प्रामाणिक दस्तावेज सिद्ध किया गया है।

इनके अतिरिक्त उस देश मे निम्नाकित कार्य और किये गये हैं

1 BARASA-ANUVEKKHA of KUNDAKUNDA (by C B Tripathi and Banshidhara Bhatta) 1976

2 TATTWARTHA STUDIES, I-II (by C Tripathi & B Bhatta) 1974.

3 Report on the Jaina Concordance in Berlin (Dr. K Bruhn & C. Tripathi).

4. PINDESANA the chapter of the OHA-NIJJUTTI on the Almsround (by Adelheid Mette), 1974

5 Indian accounts of the origin of culture and their relation to the legend of world ages which deals especially with the relevent portions of the Avashyaka Niryukti (by Adelheid Mette)

6 Shivarya's Mulareidhana (A contribution to the knowledge of the Jaina Literature of the fasting to death) (by Karl oetjens), 1976.

7 Mythology of Jainism . A Dictionary of Jaina Mythology (by Jozef DeLue)

8 Vyavahara-Naya and Nischaya-Naya in Kundakunda's Works (by B. Bhatta), 1974.

o o o

सन् १९७४-७५ ई० का वर्ष प्राकृत-भाषा, एव जैनविद्या के क्षेत्र मे एक स्वर्णिम वर्ष के रूप मे प्रसिद्ध रहेगा। यह वर्ष भ० महावीर के २५००वें निर्वाण-समारोह का वर्ष था। इस अवसर पर राजकीय एव सामाजिक स्तर पर अनेक साहित्यिक एव सास्कृतिक कार्य सम्पन्न हुए। पिछले एक-दो दशको मे कुल मिलाकर जितना साहित्य प्रकाशित हुआ होगा, उतना साहित्य केवल पिछले दो-तीन वर्षों मे ही सम्पन्न हो गया। यहाँ समस्त प्रकाशनो की चर्चा करना सम्भव नही। कुछ उपलब्ध उच्चस्तरीय साहित्य का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली के प्रकाशन

सन् १९४४ ई० मे संस्थापित इस सम्थान ने प्राकृत एव जैनविद्या के क्षेत्र मे गुण एव परिमाण दोनो ही दृष्टियो से अभूतपूर्व कार्य किये हैं। जैनविद्या-सम्बन्धी सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश, हिन्दी, कन्नड एव तमिल मे उसने अभीतक मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला, माणिकचन्द्र दि० जैन ग्रन्थमाला एव लोकोदय-ग्रन्थमाला के अन्तर्गत लगभग साढे तीन सौ विशिष्ट ग्रन्थो का प्रकाशन किया है। भ० महावीर के २५००वें निर्वाण-महोत्सव के उपलक्ष्य में भारतीय ज्ञानपीठ ने प्राकृत एवं जैनविद्या के क्षेत्र मे जैसे अद्‌भुत कार्य किये हैं, उनके उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ हैं। सन् १९७४ ७६ ई० मे उसने अनेक ग्रन्थो का प्रकाशन किया है, जिसका वर्गीकरण निम्नाकित रूप मे किया जा सकता है :

१ अद्यावधि अप्रकाशित ग्रन्थो का सर्वप्रथम प्रकाशन,

२. दुर्लभ जैनसाहित्य का पुनः प्रकाशन,

३ जैन सस्कृति, इतिहास, दर्शन, कला एवं पुरातत्त्व-सम्बन्धी श्रेण्य ग्रन्थो का प्रकाशन,

४ जैनसृष्टिविद्या का आधुनिक विज्ञान के साथ तुलनात्मक अध्ययन करनेवाले साहित्य का प्रकाशन एवं

५ अन्यान्य।

भारतीय ज्ञानपीठ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसने पुनरावृत्तियो से दूर रहकर, निरन्तर ही अपनी शक्ति, समय एवं द्रव्य के सदुपयोग का ध्यान रखा है। उसने उन्ही उच्चस्तरीय ग्रन्थो का प्रकाशन किया, जो या तो अद्यावधि अप्रकाशित थे अथवा दुर्लभ। उसने निरन्तर ही जैनविद्या के ऐसे पक्षो का प्रकाशन किया है, जो चिरकाल से या तो विस्मृत थे या उपेक्षित। इस कार्य के सम्पादन मे ज्ञानपीठ ने कुशल सूझ-बूझ से काम लिया है। उसके निम्नाकित प्रकाशनों से यह स्वत ही स्पष्ट है।

जैनकला एवं स्थापत्य . जैनकला एवं स्थापत्य भारतीय पुरातत्त्व-विद्या का एक अभिन्न अग माना जाता है। कला-मर्मज्ञो ने यद्यपि इसके वैशिष्ट्य एव मौलिक शिल्प-प्रकारो की मुक्त कण्ठ से प्रशसा की है, तथापि उनका न तो अभीतक कोई क्रमबद्ध सर्वेक्षण-समीक्षण किया गया था और न ही ऐतिहासिक क्रम से तुलनात्मक, सर्वांगीण एव प्रामाणिक विस्तृत अध्ययन के लिए प्रयास ही। यदि जब-तब कुछ लिखा भी गया, तो वह प्राय नगण्य अथवा भ्रमात्मक या एकागी दृष्टिकोणवाला होकर रह

गया। पुरातत्त्व के क्षेत्र मे यह स्थिति बडी ही दुर्भाग्यपूर्ण रही। भारतीय ज्ञानपीठ ने दीर्घकाल से उपेक्षित इस विद्या पर कार्य करने की एक योजना तैयार की और सर्वतोभावेन उसे सफल करने के लिए अथक प्रयत्न किये। फलस्वरूप, 'जैनकला और स्थापत्य' नामक ग्रन्थ तीन खण्डो मे अँगरेजी एव हिन्दी मे प्रकाशित किया गया है।

प्रथम दो खण्डो के ६ भागो मे जैनकला एव स्थापत्य की पृष्ठभूमि तथा ई० पू० ३०० से १८०० ई० तक जैनवास्तु-स्मारक एव मूर्त्तिकला का सर्वेक्षण एव उनका समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। अन्तिम तृ० ख० मे चित्राकन एव काष्ठशिल्प, पुरालेखीय एव मुद्राशास्त्रीय स्रोत, सिद्धान्त एव प्रतीकार्थ, देश-विदेश के सग्रहालयो मे सुरक्षित कला-कृतियाँ नामक भागो के अन्तर्गत विविध कला-सामग्रियो का प्रामाणिक एव तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसके धुरीण विद्वान् लेखको ने अपनी सामग्री को अधिकाधिक प्रामाणिक बनाने-हेतु तद्विषयक विविध रग-विरगे चित्र एव मानचित्र भी प्रस्तुत किये है। इसमे कुल ६२६ पृष्ठ एव ३८४ चित्र हैं। इस ऐतिहासिक ग्रन्थ का सम्पादन भारतीय पुरातत्त्व-सर्वेक्षण (भारत-सरकार) के भूतपूर्व महानिदेशक डॉ० अमलानन्द घोष ने किया है। उन्होने कला एव पुरातत्त्व-विद्या मे निष्णात लगभग ३० विद्वानो की सहायता से जैनकला एव स्थापत्य के प्रत्येक पहलू पर शाश्वत मूल्य का गम्भीर विवेचन पहली बार प्रस्तुत किया है। इस अभूतपूर्व प्रयास के लिए सम्पादक, लेखक एव प्रकाशक सभी बधाई के पात्र हैं।

वड्ढमाणचरिउ . प्रस्तुत ग्रन्थ के कर्त्ता **विबुध श्रीधर** हरियाणा-प्रान्त के निवासी थे। उनका समय वि० स० की १२वी शती सुनिश्चित है। अत, १२वी शती के हरियाणा तथा उसके आसपास के प्रदेशो की भाषा, इतिहास एव सस्कृति की झलक इस ग्रन्थ मे देखी जा सकती है। हरियाणा की अद्यावधि ज्ञात, उपलब्ध एव प्रकाशित अपभ्रश-कृतियो मे तो यह सर्वश्रेष्ठ कृति है ही, अपभ्रश-भाषा मे लिखित वर्द्धमानचरित-सम्बन्धी स्वतन्त्र कृतियो मे भी यह सर्वप्रथम कृति है। अत, इसने परवर्ती वर्द्धमानचरितो को पर्याप्त मात्रा मे प्रभावित किया है।

इसके सम्पादक एव अनुवादक **डॉ० राजाराम जैन** ने पाठ-सशोधन एवं मूलानुगामी हिन्दी-अनुवाद प्रस्तुत करने मे कठिन परिश्रम किया है। विस्तृत समीक्षात्मक प्रस्तावना, विबुध श्रीधर की उपलब्ध समस्त कृतियो की ऐतिहासिक, सास्कृतिक एव साहित्यिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण प्रशस्तियो के कुछ अशो का सकलन, वि० स० ९५५ से वि० स० १६०९ के मध्य उपलब्ध प्रमुख महावीर-चरितो का

तुलनात्मक अध्ययन एवं विस्तृत शब्दकोश आदि प्रस्तुत कर सम्पादक ने अपभ्रंश-साहित्य की महान् सेवा की है।

रामचरितपुराणम् (अथवा पम्परामायण) कन्नड-साहित्य की एक प्रौढ रचना है। इसके कर्त्ता नागचन्द्र (अपरनाम अभिनव पम्प लगभग सन् १०४० ई०) ने चम्पूकाव्य-शैली मे रामकथा का मार्मिक निरूपण किया है। मूल कथानक का आधार यद्यपि विमलसूरि-कृत पउमचरिय तथा रविषेण-कृत पद्मचरित है, तथापि कवि की विषय-प्रतिपादन-शैली उसकी अपनी है। कन्नड के इस लोकप्रिय कवि ने परवर्ती-साहित्य पर अपनी अमिट छाप छोडी है।

उक्त ग्रन्थ सर्वप्रथम श्री वी० एल्० राइस द्वारा सम्पादित होकर सन् १८८२ ई० और उसके बाद सन् १९२१ ई० मे कर्नाटक-साहित्य-परिषद्, बंगलोर द्वारा प्रकाशित किया गया था। सन् १९५१ ई० मे मैसूर-विश्वविद्यालय ने भी डी०एल्० नरसिंहाचार्य की भूमिका के साथ 'पद्मरामायणसग्रह' के नाम से इसका प्रकाशन किया था, किन्तु भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली द्वारा प्रकाशित प्रस्तुत संस्करण सर्वोपरि एव अत्याधुनिक है। कन्नड-साहित्य के अनुभवी विद्वान् डॉ० आर० सी० हिरेमठ (कुलपति, कर्नाटक-विश्वविद्यालय) ने घोर परिश्रमपूर्वक इसका पाठ-सशोधन, विस्तृत समीक्षात्मक भूमिका, मूलानुगामी भाव-सक्षेप एव शब्दानुक्रमणी आदि तैयार कर कन्नड-भाषा एव जैनविद्या के क्षेत्र मे ऐतिहासिक मूल्य का एक अनुपम ग्रन्थरत्न भेंट किया है।

वर्द्धमानपुराणम् : कन्नड-साहित्य का एक सर्वश्रेष्ठ चम्पूकाव्य माना जाता है। इसके कर्त्ता महाकवि आचण्ण (सन् ११९० ई०) ने १६ सर्गों मे भगवान् महावीर का बडा ही सुन्दर एव आलकारिक भाषा मे जीवनचरित प्रस्तुत किया है।

सन् १९५३ ई० मे मद्रास-विश्वविद्यालय ने सर्वश्री मरियप्पा भट्ट एव एम्० गोविन्दराव द्वारा श्रीजैनसिद्धान्त भवन, आरा (बिहार) की एकमात्र उपलब्ध हस्तप्रति के आधार पर सम्पादित कराकर इसे प्रकाशित किया था। गत वर्ष भारतीय ज्ञानपीठ (दिल्ली) ने अधुनातन पद्धति से प्रामाणिक पाठ-सशोधन, विस्तृत आलोचनात्मक भूमिका तथा छन्द संक्षेपविधि-पूर्वक इस ग्रन्थ का सर्वप्रथम प्रकाशन कर एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। इसके सुयोग्य सम्पादक प्रो० टी० एस्० शामाराव का परिश्रम सराहनीय है, जिनके अथक प्रयास से शोधार्थियो के लिए एक उपयोगी सन्दर्भ-ग्रन्थ तैयार हो सका। यदि इसमे हिन्दी या अँगरेजी-अनुवाद और जोड दिया जाता, तो इनके अध्येताओ की परिधि और भी विस्तृत हो जाती।

वर्द्धमान चरितम् : महाकवि **पद्म**-कृत कन्नड-भाषा का यह एक गौरव-ग्रन्थ है, जो अद्यावधि अप्रकाशित था। महाकवि पद्म विजयनगर के राजा कृष्णदेव राय (सन् १५०६—१५२६ ई०) के समकालीन थे, ऐसा कवि के एक उल्लेख से विदित होता है। प्रस्तुत ग्रन्थ मे, १२ सर्ग हैं, जिनमे कन्नड के अत्यन्त लोकप्रिय सांगत्य-छन्द में भगवान् महावीर का जीवनचरित प्रस्तुत किया गया है।

इस ग्रन्थ के सम्पादक **श्री वी० एस्० सण्णैया** ने दो प्राचीन हस्तप्रतियो के आधार पर पाठ-संशोधन तथा विस्तृत समीक्षात्मक प्रस्तावना आदि तैयार कर कन्नड-साहित्य की इस सुन्दर रचना को सर्वप्रथम प्रकाश-दान देकर लोकोपयोगी कार्य किया है। भारतीय ज्ञानपीठ ने इसका प्रकाशन कर निस्सन्देह ही कन्नड-भाषा एव साहित्य के प्रति अपनी भावभीनी श्रद्धाजलि अर्पित की है।

देवगढ की जैन चित्रकला : एक सांस्कृतिक अध्ययन : जैन पुरातत्त्व के ऐतिहासिक एव सास्कृतिक सर्वेक्षण-समीक्षण-सम्बन्धी उक्त शोधपरक ग्रन्थ **डॉ० भागचन्द्र जैन** (दमोह, म० प्र०) की चिरन्तन साधना का सुफल है। देवगढ के पुरातत्त्व पर यद्यपि १६वी शती के प्रारम्भ से ही शोधकार्य होता आ रहा है, तथापि वह मात्र छिटपुट एव प्रासगिक ही रहा है। प्रस्तुत ग्रन्थ मे देवगढ मे उपलब्ध प्राय समस्त जैन पुरातात्त्विक सामग्री पर सर्वांगीण दृष्टि से सचित्र अध्ययन प्रस्तुत करने का सर्वप्रथम सराहनीय प्रयास किया गया है।

भारत के दिगम्बर जैनतीर्थ : भारतीय ज्ञानपीठ के सयोजन एव निर्देशन मे अ० भा० दि० जैन तीर्थक्षेत्र-कमेटी, बम्बई ने उक्त ग्रन्थ का प्रकाशन पाँच खण्डो मे किया है। प्रथम खण्ड मे उत्तरप्रदेश, द्वि० ख० मे बगाल, बिहार एव उडीसा, तृतीय खण्ड मे मध्यप्रदेश, चतुर्थ खण्ड मे राजस्थान, गुजरात एव महाराष्ट्र तथा अन्तिम पचम खण्ड मे दक्षिण भारत के तीर्थो का वर्णन प्राचीन क्षेत्रीय भू-भागो के नामो के आधार पर किया है। अभी प्रथम दो खण्ड ही प्रकाशित हुए हैं और शेष तीन खण्ड यन्त्रस्थ हैं। सन्दर्भित तीर्थों के वर्णन-क्रम मे पौराणिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक तथा स्थापत्य एव कला-सम्बन्धी विविध सन्दर्भ-सामग्री भी प्रकाश मे आई है और इस माध्यम से भविष्य मे होनेवाले शोधकार्यो मे वह सामग्री सर्वोपयोगी होगी, इसमे सन्देह नही।

प्रस्तुत वृहत्काय ग्रन्थ के लेखक **प० श्री बलभद्र जैन** हैं, जिनके गम्भीर अध्ययन एव कठिन परिश्रम से जैनतीर्थ-सम्बन्धी इस साहित्य ने जैनविद्या के सौभाग्य की सर्वप्रथम सिन्दूरी रेखा का अकन किया है।

१ वीर-शासन के प्रभावक आचार्य, २. ऐतिहासिक जैनपुरुष और महिलाएँ : जैनसाहित्य, इतिहास एव सस्कृति की दृष्टि से उक्त दोनो ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण हैं। प्रथम

ग्रन्थ के लेखकद्वय डॉ० विद्याधर जोहरापुरकर एव डॉ० कस्तूरचन्द्र कासलीवाल ने इस ग्रन्थ मे वीरनिर्वाण-सवत् की प्रथम शती से २५००वी शती तक के प्रमुख जैनाचार्यों, भट्टारको एव प्राचीन शास्त्रकारो के जीवन एव उनकी कृतियो का मूल स्रोतो के आधार पर सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया है। उक्त दूसरे ग्रन्थ के लेखक डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन (लखनऊ) हैं। इस ग्रन्थ मे, उन्होने साम्प्रदायिक सकीर्णताओं से परे रहकर भ० महावीर के समय से वर्तमान काल तक के प्रमुख जैन सम्राट्, नगरश्रेष्ठी, सामन्त एव समाजोद्धारक नेताओ का चिर-प्रतीक्षित प्रामाणिक जीवनवृत्त उपस्थित किया है। वस्तुत, ये दोनो ग्रन्थ एक दूसरे के पूरक हैं और इन तीनो विद्वानो ने उक्त दोनो कृतियो के माध्यम से जैनसाहित्य, इतिहास एव सस्कृति की यत्र-तत्र बिखरी एव किन्ही अज्ञात कारणो से धूमिल अथवा प्रच्छन्न सामग्री को प्रकाश-दान देकर जैनविद्या की इस उपेक्षित शाखा को धवलित किया है।

Religion and culture of the Jainas : डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन द्वारा अँगरेजी मे लिखित एक ऐसा लघु ग्रन्थ है, जिसमे जैनविद्या के कुछ प्रमुख अंगो इतिहास, सस्कृति, दर्शन, सिद्धान्त, आचार, अध्यात्म, कला, स्थापत्य आदि पर सक्षिप्त, किन्तु सारभूत विवेचन प्रस्तुत किया गया है। शोधार्थियो तथा सामान्य तत्त्वजिज्ञासुओ के लिए यह पुस्तक मार्ग-निर्देशिका का कार्य करेगी।

महाकवि हरिचन्द्र · एक अनुशीलन . पं० (डॉ०) पन्नालाल जैन (सागर, म० प्र०)-कृत यह उनका शोध-प्रबन्ध है, जिसपर उन्हे कुछ वर्षों पूर्व सागर-विश्वविद्यालय से पी-एच्० डी० की उपाधि प्राप्त हुई थी। महाकवि कालिदास, भारवि एव माघ की कोटि का यह कवि शताब्दियो से उपेक्षित रहा, यद्यपि उसकी 'धर्मशर्माभ्युदय' तथा 'जीवन्धरचम्पू' जैसी सस्कृत-भाषा में लिखित प्रौढ कृतियाँ अपूर्व एव मौलिक हैं और वे अध्येता विद्वानो को आश्चर्यचकित भी करती रही हैं।

कवि हरिचन्द्र कायस्थ जाति के थे, किन्तु उन्होने जैनधर्म स्वीकार कर दीर्घ साधना-पूर्वक उसे अपने जीवन मे उतारा और पूर्ण सस्कारी बनकर उक्त दोनो कृतियो का प्रणयन किया था। प० पन्नालालजी ने उक्त दोनो ग्रन्थो का पाठ-सशोधन कर उनके हिन्दी-अनुवाद प्रस्तुत किये, जो भारतीय ज्ञानपीठ से पूर्व मे ही प्रकाशित हो चुके थे। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के कुल चार अध्यायो मे लेखक ने ग्रन्थकार के जीवन-वृत्त पर गम्भीर विवेचन प्रस्तुत कर, उक्त दोनो ग्रन्थो के कथानको के मूलस्रोतो के विश्लेषण के साथ ही उनका काव्यशास्त्रीय तथा सामाजिक, सास्कृतिक एव भौगोलिक अध्ययन प्रस्तुत किया है। इस शोधग्रन्थ के प्रकाशित हो जाने से अब महाकवि हरिचन्द्र-सम्बन्धी समस्त ज्ञात साहित्य अपने मूल्याकन-सहित प्रकाश मे आ गया है।

पचास्तिकायसार **आचार्य कुन्दकुन्द**-कृत शौरसेनी-प्राकृत का प्रमुख दार्शनिक ग्रन्थ है, जिसमे पाँच अस्तिकायो का वैज्ञानिक वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इसकी लोकप्रियता इसी से जानी जा सकती है कि अभी तक उसके विविध अनुवादो एव टीकाओ के साथ लगभग १५ से अधिक सस्करण निकल चुके हैं। अमृतचन्द्र, ब्रह्मदेव, देवजित, जयसेन, ज्ञानचन्द्र, मल्लिषेण एव प्रभाचन्द्र ने सस्कृत-टीकाएँ लिखकर अपने-अपने समयो मे इसे सर्वोपयोगी बनाने का प्रयास किया था। इन टीकाओ का प्रकाशन भी हो चुका है। कवि बालचन्द्र ने इस ग्रन्थ पर एक कन्नड टीका भी लिखी थी, किन्तु वह अभी तक अप्रकाशित ही है। पं० हेमराज (१७०० वि० स०), राजमल्ल (१७१६ वि० स०), हीराचन्द (१७१८ वि० स०), एव विधिचन्द (१८६१ वि० स०) ने भी हिन्दी-टीकाएँ लिखी। सन् १९२० ई० के आसपास 'सेक्रेड-बुक्स ऑव दि जैनाज सीरीज' (आरा) के अन्तर्गत उसका मूल एव अँगरेजी-अनुवाद भी प्रकाशित हुआ था, किन्तु उसके अनुपलब्ध रहने से भारतीय ज्ञानपीठ से गत वर्ष इसका पुन प्रकाशन हुआ है। इसमे कई नवीनताएँ हैं। मूल, स० छा० एव अमृतचन्द्राचार्य की स० टी० के साथ-साथ प्रो० ए० चक्रवर्ती की विस्तृत तुलनात्मक एव समीक्षात्मक प्रस्तावना तथा डॉ० ए० एन्० उपाध्ये की सम्पादन-कला ने ग्रन्थ को अत्याधुनिक विधा से प्रस्तुत कर देश एव विदेश के शोधार्थियो का बडा उपकार किया है।

Jain literature in Tamil मे प्रो० ए० चक्रवर्ती ने सम्भवतः सर्वप्रथम तमिल-भाषा के जैनसाहित्य का सर्वेक्षण एव समीक्षण प्रस्तुत किया है। इसका प्रथम सस्करण सन् १९४१ ई० मे श्रीजैनसिद्धान्त-भवन आरा (बिहार) से प्रकाशित हुआ था। उसके दुर्लभ हो जाने के बाद डॉ० के० वी० रमेश द्वारा किया गया आवश्यक सशोधन एव परिवर्द्धन के साथ तथा उसमे ऐतिहासिक मूल्य की परिशिष्ट तथा शब्दानुक्रमणिका जोडकर यह नवीन सस्करण भारतीय ज्ञानपीठ ने प्रकाशित किया है। इसमे तमिल-प्रदेश मे जैनधर्म का प्रवेश तथा उसकी पृष्ठभूमि मे लिखित सामान्य तमिल-साहित्य का सर्वेक्षण कर वहाँ के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ कुरल-काव्य, नालडियार, शिलप्पदिकारम्, जीवक-चिन्तामणि, यशोधर-काव्य, चूडामणि, नीलकेशी, पेरुकन्थई, मेरुमन्दिरपुराणम्, श्रीपुराणम् आदि अनेक गौरव-ग्रन्थो का परिचय प्रस्तुत कर सामान्य तमिल-साहित्य पर जैनधर्म के प्रभाव का सप्रमाण विवेचन प्रस्तुत किया गया है। भारतीय ज्ञानपीठ ने उसका प्रकाशन कर साहित्य-जगत् का महदुपकार किया है।

Cosmology Old and New यह ग्रन्थ उमास्वाति-कृत तत्त्वार्थसूत्र के पचम अध्याय का अँगरेजी-भाष्य है। इसमे जैनदर्शन-सम्मत 'द्रव्य-व्यवस्था' का

आधुनिक वैज्ञानिक मान्यताओं के साथ तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। अपने विषय का विशिष्ट एव सम्भवत सर्वप्रथम लिखित इस ग्रन्थ का प्रकाशन सन् १९४२ ई० मे जे० एल्० जैनी ट्रस्ट (इन्दौर) की ओर से किया गया था। उसके बाद दीर्घ काल से इसके अनुपलब्ध रहने के कारण विशेष सशोधनो एव परिवर्द्धनो के साथ गत वर्ष पुन इसका प्रकाशन किया गया है। इसके लेखक प्रो० घासीराम जैन भौतिकशास्त्र के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् हैं। उन्होने जैनसृष्टिविद्या का आधुनिक विज्ञान के साथ तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर उसकी वैज्ञानिकता सिद्ध की है। अगली पीढी के लिए यह ग्रन्थ मार्गनिर्देशक का कार्य करेगा, इसमे सन्देह नहीं है।

भारतीय सृष्टिविद्या : प्रस्तुत ग्रन्थ डॉ० प्रकाश का पी-एच्० डी० स्तर का शोध-प्रबन्ध है, जिसमे उन्होंने प्राचीन जैन, बौद्ध एव वैदिक साहित्य मे वर्णित सृष्टि-विद्या का विकासवाद के सन्दर्भ में तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। सृष्टिविद्या पर व्यापक दृष्टि से लिखा गया यह अपने विषय का अनूठा हिन्दी-ग्रन्थ है।

वर्द्धमान-रूपायन : प्रस्तुत ग्रन्थ मे साहित्य-जगत् की सुप्रसिद्ध लेखिका श्रीमती कुन्था जैन द्वारा प्रणीत दिव्यध्वनि छन्द (सगीत-नृत्य-नाटिका), वीतराग (मंच-नाटक) और मानस्तम्भ (मच-योग्य रेडियो-नाटक) नामक तीन लघु नाटको का संकलन है।

दिव्यध्वनि छन्द मे जैन-परम्परानुमोदित भोगभूमिकालीन जीवनधारा के दिग्दर्शन के बाद ऋषभदेवकालीन सामाजिक व्यवस्था, तत्पश्चात् क्रमिक विकसित महावीरकालीन जीवन-पद्धति का चित्रण कर उसमे आधुनिक वर्ग-सघर्षो का ज्वलन्त एव यथार्थ इतिवृत्त प्रस्तुत किया गया है। 'वीतराग' मे आज के सन्तप्त एव सन्त्रस्त मानव के सम्मुख तीर्थंकर वर्द्धमान का त्याग एव भावना से ओतप्रोत जीवन आदर्श के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। 'वर्द्धमान-रूपायन' मे सकलित इन तीनों नाटको का प्रमुख उद्देश्य है—भ० महावीर के तप, त्याग एव भावनापूर्ण जीवन का प्रस्तुतीकरण एव आज के त्रस्त एव सन्तप्त मानव को इनके उदात्त एव अमृतमय उपदेशो की सार्थकता की उद्घोषणा। पौराणिक कथ्य को नवीन भाषा-शैली मे प्रस्तुत करने का यह एक मौलिक एवं रोचक नवीन प्रयोग है, जिसमे इतिहास, सस्कृति, दर्शन, आचार, कला एव शिल्प का एक साथ समन्वय हुआ है।

वीरवर्द्धमानचरित : १५वीं शती के विद्वान् भट्टारक सकलकीर्त्ति कृत प्रस्तुत ग्रन्थ पूर्व मे वर्द्धमानपुराण के नाम से प्रकाशित हो चुका है, किन्तु प्राचीन हस्तलिखित प्रतियो के आधार पर सशोधित, मूलानुगामी हि० अनु०, विस्तृत समीक्षात्मक प्रस्तावना तथा आवश्यक परिशिष्टो के साथ उक्त शीर्षक मे सर्वप्रथम प्रकाशित हुआ है।

इसका सम्पादन जैनविद्या-जगत् के प्रसिद्ध विद्वान् तथा शौरसेनी-प्राकृत-साहित्य के अनेक ग्रन्थों के उद्धारक एवं सम्पादक प० श्रीहीरालालजी शास्त्री (साढूमल, झाँसी, उत्तरप्रदेश) ने किया है।

वीरजिणिदचरिउ : प्रस्तुत ग्रन्थ डॉ० हीरालाल जैन द्वारा सम्पादित अपभ्रंश की एक सरस, सुन्दर लघु रचना है। महाकवि पुष्पदन्त-कृत महापुराण से 'वीरजिणिदचरिउ' तथा श्रीचन्द्र-कृत कथाकोष से 'जंबूसामिचरिउ' के अंशों को लेकर संयुक्त रूप से मूलानुगामी हिन्दी-अनुवाद तथा गवेषणात्मक गम्भीर प्रस्तावना के साथ उसे उक्त नाम से सर्वप्रथम प्रकाशित किया गया है।

महावीर : युग और जीवन-दर्शन : डॉ० हीरालाल जैन एवं डॉ० ए०एन० उपाध्ये की संयुक्त कृति है। इसमें उन्होंने भ० महावीर का जीवन-दर्शन निष्पक्ष दृष्टि से प्रस्तुत किया है। इसके साथ ही महावीर-युगीन विविध समस्याओं पर भी शोधपूर्ण प्रकाश डालने के अनन्तर महावीरकालीन नरेश एवं महावीर-सम्बन्धी विविध विषयक साहित्य-परम्परा पर अनुसन्धानात्मक प्रकाश डाला गया है। यह पुस्तक अति संक्षिप्त होने पर भी सारगर्भ है तथा शोधार्थियों के लिए एक प्रामाणिक सन्दर्भ-पुस्तिका के रूप में संग्रहणीय है। इसका **Mahavir His Times and His Philosophy of life** के नाम से अँगरेजी-अनुवाद भी प्रकाशित किया गया है।

जिनवाणी डॉ० हीरालाल जैन की अन्तिम कृति है। इसके ४२ प्रकरणों में उन्होंने जैनधर्म, दर्शन, सिद्धान्त, आचार एवं अध्यात्म के मर्म का उद्घाटन करनेवाली ८५६ प्राचीन प्राकृत-गाथाओं का संकलन किया है, साथ में मूलानुगामी हिन्दी-अनुवाद भी प्रस्तुत किया गया है। दुर्भाग्य से इस कृति के प्रकाशन के पूर्व ही डॉ० जैन का निधन हो गया, इस कारण वे उसकी विस्तृत भूमिका नहीं लिख सके, अन्यथा जैनदर्शन की क्रमिक विकास-परम्परा में उनकी लेखनी से अनेक रहस्यपूर्ण तथ्य सम्मुख आने की सम्भावनाएँ थीं।

वड्ढमाणकहा के कवि **नरसेन** का समय अभीतक अनिश्चित है, किन्तु अनुमानतः वे १६वीं शती के कवि रहे हैं। उनकी एक अन्य रचना **सिरिवालचरिउ** भी है। ये दोनों रचनाएँ प्रामाणिक पाठों, हिन्दी-अनुवाद, शब्द-सूचियों एवं विस्तृत समीक्षात्मक भूमिकाओं में सुसज्जित हैं। **डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री** (नीमच) ने अद्यावधि अप्रकाशित उक्त 'वड्ढमाणकहा' का सम्पादन कर अपभ्रंश-जगत् को एक नवीन कृति प्रदान की है।

श्रीलालभाई दलपतभाई संस्कृति-विद्यामन्दिर, अहमदाबाद के अभिनव प्रकाशन

प्राच्य भारतीय संस्कृति के समुत्थान के लिए सन् १९५७ ई० में संस्थापित एवं समर्पित इस संस्थान ने केवल १८-१९ वर्षों के अल्पकाल में ही विविध-विषयक लगभग ६३ ऐसे उच्चस्तरीय ग्रन्थों का प्रकाशन किया है, जिन्होंने भारतीय विद्या के क्षेत्र को पर्याप्त समृद्ध बनाया है। सन् १९७४ से ७६ ई० तक के मध्य उसने लगभग बीस ग्रन्थो का प्रकाशन किया है, जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं :

तत्त्वार्थसूत्र : उक्त संस्थान के प्रकाशनो में उमास्वाति-कृत 'तत्त्वार्थसूत्र' का प्रकाशन अपना विशेष महत्व रखता है। अभी तक इस ग्रन्थ पर संस्कृत, हिन्दी, गुजराती एवं अन्य भारतीय भाषाओं में अनेक भाष्य एवं अनुवाद तो किये गये, किन्तु सर्वसुलभ अँगरेजी-संस्करण का अभाव था। सन् १९२० ई० मे बहादुर जुगमन्दिर लाल जैनी-कृत सर्वप्रथम अँगरेजी-भाष्य का प्रकाशन Sacred Books of the Jainas Series के अन्तर्गत Central Jain Publishing House, Arrah (Bihar) ने किया था। उस संस्करण की समाप्ति के बाद सन् १९५६ ई० मे दिल्ली में सम्पन्न 'यूनेस्को कान्फ्रेन्स' के अवसर पर उसका द्वितीय संस्करण भी छपा था, किन्तु उसके भी दुर्लभ हो जाने से शोध-जगत् मे उसका अभाव बहुत खटकता रहा। अब इस संस्थान ने ऋषिकल्प **पं० सुखलालजी संघवी**-कृत तत्त्वार्थसूत्र के हिन्दी-भाष्य एवं **डॉ०के० के० दीक्षित**-कृत अँगरेजी-अनुवाद का प्रकाशन कर शोधार्थियों एवं तत्त्व-जिज्ञासुओं द्वारा वर्षों से अनुभव की जानेवाली इस कमी को दूर कर जैनविद्या का महदुपकार किया है।

प्राचीन गूर्जरकाव्य-संचय : प्रस्तुत ग्रन्थ मे १३वीं शती के अद्यावधि अप्रकाशित विविध विषयक ४० लघु ग्रन्थो का सकलन है। प्राचीन हस्तप्रतियो के पाठालोचन एवं पाठ-सशोधन-कला के मर्मज्ञ डॉ० एच्० सी० भायाणी एवं सिद्धान्ताचार्य श्रीअगरचन्दजी नाहटा ने घोर परिश्रमपूर्वक इन जीर्ण-शीर्ण ग्रन्थो का उद्धार एवं सम्पादन कर प्राचीन साहित्य-माला के लिए एक अभिनव मणि प्रदान की है। डॉ० भायाणी के १६ पृष्ठों की संक्षिप्त प्रस्तावना मे प्रतियो का परिचय, कवियो का जीवन-वृत्त, सचित ग्रन्थो की भाषा एवं छन्दो का मूल्यांकन तथा अन्त मे महत्त्वपूर्ण शब्दों का कोश प्रस्तुत किया गया है, जो मूलपाठो के अर्थ-रहस्य की जानकारी-हेतु कुंजी का कार्य करता है। हिन्दी के उद्भव एवं विकास तथा उसके भाषावैज्ञानिक अध्ययन मे यह ग्रन्थ विशेष सहायक होगा, इसमे सन्देह नहीं।

ऋषिदत्तारास : जयवन्त सूरि द्वारा वि० स० १६१४ के आसपास लिखित जूनी गुजराती की एक सरस रचना है, जिसके सर्वप्रथम सम्पादन एवं

मूल्यांकन का श्रेय डॉ० निपुणा श्र० दलाल को है। ग्रन्थ के विविध पक्षों पर लिखित विस्तृत भूमिका, प्रामाणिक पाठ-संशोधन, शब्द-सूची तथा विविध परिशिष्टों से सनाथ प्रस्तुत ग्रन्थ हस्तप्रतियों पर कार्यरत शोधार्थियों के लिए एक आदर्श का काम करेगा, ऐसा विश्वास है।

गाहारयणकोस : प्रस्तुत रचना १३वीं सदी के कवि **जिनेश्वरसूरि**-कृत प्राकृत-भाषा का एक सुन्दर कोश-ग्रन्थ है, जिसमे विविध-विषयक ५८ प्रकरण एवं ८२२ गाथाएँ हैं। यह ग्रन्थ अभीतक अप्रकाशित ही था। **पं० श्री अमृतलाल मो० भोजक** एवं **डॉ० नगीन भाईजी शाह** ने अनेक प्रतियों के आधार पर इसके पाठ-संशोधन मे श्लाघ्य परिश्रम किया है और इस माध्यम से उन्होने प्राकृत-विद्या के क्षेत्र को एक नीतिपरक सुन्दर मुक्तक-काव्य भेंट किया है। इसकी संक्षिप्त प्रस्तावना मे ग्रन्थ का महत्त्व तथा परिशिष्टों मे 'गाहारयणकोस' तथा 'वज्जालग्ग' मे समान रूप से पाई जानेवाली गाथाओं-सम्बन्धी 'सुभासियगाहासंगहो' नाम की दो अन्य रचनाएँ, मूल ग्रन्थ की गाथानुक्रमणिका तथा विशिष्ट शब्द-सूची भी प्रस्तुत की गई है, जिससे ग्रन्थ की महत्ता और अधिक बढ गई है।

हैमनाममालाशिलोञ्छ : हेमचन्द्राचार्य-कृत 'अभिधानचिन्तामणि-नाममाला' नामक कोष-ग्रन्थ सुप्रसिद्ध है। नाम-शब्द-संग्रह कर लेने के बाद भी जब अनेक नाम-शब्द छूट गये, तब ग्रन्थकार ने उन नाम-शब्दो तथा अन्य नवोपलब्ध शब्दो का संग्रह कर 'शेषसंग्रहनाममाला' नामक पुन एक स्वतन्त्र ग्रन्थ की रचना की। किन्तु उसके बाद भी अनेक नाम-शब्द शेष ही रह गए। अत, उनका संग्रह १५वीं सदी के **आचार्य जिनदेव सूरि** ने किया था जो 'शिलोञ्छ' (कणिशादिचुण्टनम्) के नाम से प्रसिद्ध है। चूँकि यह शिलोञ्छ उक्त 'अभिधानचिन्तामणि-नाममाला' का पूरक ग्रन्थ ही है, अतः जिनदेव सूरि ने इसका नाम 'हैमनाममालाशिलोञ्छ' रखा।

उक्त शिलोञ्छ सर्वप्रथम सन् १८९६ ई० मे निर्णयसागर प्रेस, बम्बई से अभिधानसंग्रह के एक अंग के रूप मे प्रकाशित हुआ था तथा उसके बाद सन् १९५७ ई० मे **जसवन्तलालजी शाह** (अहमदाबाद) ने 'अभिधानचिन्तामणिकोष' के साथ इसे प्रकाशित किया था, किन्तु उनके पाठ बडे भ्रामक थे। अत, संस्थान की प्रेरणा से **महामहोपाध्याय विनयसागरजी** ने प्राचीन हस्तप्रतियो के आधार पर घोर परिश्रम-पूर्वक उसका पाठ-संशोधन तथा **श्रीवल्लभगणि** (वि० सं० १६२५)-कृत 'शिलोञ्छ' पर लिखी गई 'दीपिका' नामक टीका, जो कि अद्यावधि अप्रकाशित थी, को भी सम्पादित तथा उक्त ग्रन्थ मे संयुक्त कर महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। प्रस्तुत कृति अपने क्षेत्र की, इस वर्ष की सर्वोत्तम उपलब्धि मानी जा सकती है।

Atonements in the Ancient Rituals of the Jaina monks.

प्रस्तुत ग्रन्थ की लेखिका **Colette Caillat** पेरिस-विश्वविद्यालय मे संस्कृत की प्राध्यापिका हैं। इन्होने उक्त ग्रन्थ मे प्राचीन जैनागमो मे वर्णित जैनसाधुओं के अन्तर्वाह्य तपो के सन्दर्भ मे प्राप्त प्रायश्चित्त-विधि का वैदिक एव बौद्ध-विधियो से तुलना करते हुए समीक्षात्मक अध्ययन किया है। तुलनात्मक पद्धति से सर्वप्रथम प्रस्तुत यह ग्रन्थ अपने विषय का अद्वितीय और मौलिक है।

उक्त ग्रन्थ सर्वप्रथम फ्रेंच-भाषा मे लिखा गया था और पेरिस की 'Institute of Indian Civilization' नामक सस्थान से प्रकाशित हुआ था। बाद मे कुछ सशोधनों के पश्चात् उसका अँगरेजी-अनुवाद यहाँ से प्रकाशित किया गया है। इस कृति के लिए डॉ० कौलेटे कैलाट बधाई की पात्री हैं।

जैन विश्वभारती शोध-संस्थान, लाडनूँ (राजस्थान) के प्रकाशन

भारतीय जैन शोध-संस्थानो मे जैन विश्वभारती के शोधकार्यों का प्रकाशन अपना विशेष महत्व रखता है। आधुनिक काल के महान् श्रुतधर **आचार्यश्री तुलसी गणि** की आगम-साहित्य-प्रकाशन-सम्बन्धी योजनाओ के कार्यान्वयन मे उसने अनुकरणीय आदर्श उपस्थित किया है। आचार्यश्री के निर्देशन मे सस्थान ने आगम-साहित्य के प्रामाणिक एव अद्युनातन पद्धति से प्रकाशन के लिए निम्नाकित योजनाएँ तैयार की हैं·

१. **आगमसुत्त-ग्रन्थमाला :** मूलपाठ, शब्दानुक्रम आदि के साथ आगम-ग्रन्थो का प्रकाशन।

२. **आगम-अनुसन्धान-ग्रन्थमाला ·** मूलपाठ, स० छा०, हिन्दी-अनु०, पद्यानुक्रम, सूत्रानुक्रम तथा मौलिक टिप्पणियो के साथ आगम-ग्रन्थो का प्रकाशन।

३. **आगम-अनुशीलन-ग्रन्थमाला :** आगम-ग्रन्थो के समीक्षात्मक अध्ययनो का प्रस्तुतीकरण।

४. **आगम-कथा-ग्रन्थमाला :** आगमो से सम्बद्ध कथाओ का संकलन एवं अनुवाद।

५. **वर्गीकृत आगम-ग्रन्थमाला :** आगम-ग्रन्थो का सक्षिप्त वर्गीकृत रूप मे प्रकाशन।

उक्त योजनाओ को कलकत्ता की श्वे० ते० प० महासभा ने जैन विश्वभारती की एक मातृसस्था के रूप मे सन् १९६४ ई० के आसपास मूर्त रूप दे दिया था तथा

उक्त प्रथम ग्रन्थमाला के अन्तर्गत १ दसवेआलियं तह उत्तरज्झयाणि, २ आयारो तह आयारचूला, ३ निसीहज्झयणं, ४ उववाइय तह समवाओ नामक ग्रन्थो का प्रकाशन किया था, इसके साथ ही 'रायपसेणइय' एवं 'सुयगडो' (प्रथम श्रुत०) का मुद्रण-कार्य भी प्रारम्भ किया गया था। दूसरी ग्रन्थमाला के अन्तर्गत १ दसवेआलियं एवं २ उत्तरज्झयाणि (भा० १-२) भी प्रकाशित किये गये। 'समवायाग' का भी मुद्रणारम्भ किया गया था। तीसरी ग्रन्थमाला मे दशवैकालिक एवं उत्तराध्ययन के पृथक्-पृथक् समीक्षात्मक अध्ययन प्रकाशित हो चुके है। पाँचवी ग्रन्थमाला मे दशवैकालिक वर्गीकृत (धर्मप्रज्ञप्ति, ख० १) एवं उत्तराध्ययन वर्गीकृत (धर्मप्रज्ञप्ति, ख० २) का प्रकाशन हो चुका है। लाडनूँ मे स्वतन्त्र रूप मे स्थापित होने के बाद जैन विश्वभारती ने आगम-साहित्य-प्रकाशन-सम्बन्धी उक्त कार्यों को पुन तीव्रगति प्रदान की है। उसने भ० महावीर के २५००वें निर्वाण-महोत्सव के अवसर पर उक्त प्रथम ग्रन्थमाला के अन्तर्गत 'अगसुत्ताणि' के नाम से उसके तीन खण्डो मे ग्यारह अग-ग्रन्थो के मूल सशोधित पाठो को प्रस्तुत किया है। प्रथम खण्ड में सगृहीत ४ अग-ग्रन्थो मे से आचाराग एव सूत्रकृताग मे प्रयुक्त आदर्शों मे, चूर्णि एव वृत्ति के सन्दर्भ मे पाठो को उनके तुलनात्मक अध्ययन एव गम्भीर समीक्षा के बाद स्वीकार किया गया है। 'ठाणाग' मे कुछ हस्तप्रतियो के आधार पर तथा 'समवायाग' का पाठ-सशोधन तीन प्राचीन आदर्श प्रतियो एवं वृत्ति के आधार पर तैयार किया गया है।

द्वि० ख० मे सगृहीत 'भगवतीसूत्र' को ताडपत्र एव कर्गलीय ७ हस्तप्रतियो तथा आगमोदय-समिति द्वारा प्रकाशित प्रति के आधार पर सशोधित पाठों के साथ प्रस्तुत किया गया है।

तृ० ख० मे भी कतिपय उपलब्ध ताडपत्रीय एव कर्गलीय हस्तप्रतियो के आधार पर पाठ-सशोधनो के साथ अवशिष्ट अग-ग्रन्थो को प्रस्तुत किया गया है।

'दसवेआलिय' के पूर्वोक्त सस्करण की समाप्ति के बाद उसका दूसरा सस्करण जै० वि० भा० ने पुन. प्रकाशित किया है, जिसे प्रथम सस्करण की अपेक्षा अधिक प्रामाणिक एव सर्वांगीण बनाने का प्रयास किया गया है। अन्य ग्रन्थो मे आयारो (मूलपाठ एव हि० अनु० सह) दशवैकालिक एव उत्तराध्ययन (मूलानुगामी हि० अनु० मात्र) तथा दसवेआलियं और उत्तरज्झयाणि (मूलमात्र) का भी पुन प्रकाशन किया गया है।

वैसे आगम-साहित्य के विभिन्न सस्थानो से अनेकविध सस्करण निकल चुके हैं, किन्तु **आचार्य तुलसी गणि** के निर्देशन मे सम्पन्न यह कार्य सर्वांगीण एव सर्वोपयोगी

शोधकार्य सिद्ध होगा, ऐसा विश्वास है। विषय एव भाषा के पूर्व ऐतिहासिक क्रम को ध्यान मे रखते हुए, अस्पष्ट या सन्दिग्ध पाठो को चूर्णियो एव वृत्तियो के आलोक मे निर्धारित कर उनका पाठ-सशोधन सावधानी से प्रस्तुत किया गया है। इसमे आगममूर्त्ति मुनि नथमलजी एव आगम-साहित्य के लिए समर्पितव्यक्तित्व श्री श्रीचन्द्रजी रामपुरिया एव उस दल के अनेक साधु-साध्वियो को जितना परिश्रम करना पडा होगा, उसे भुक्तभोगी ही जान सकता है। उक्त साधको के अथक परिश्रम से जैनविद्या को इन ग्रन्थो के रूप मे जो नवीन उपलब्धियाँ प्राप्त हुई, उनके लिए साहित्य-जगत् उनका आभारी रहेगा।

उक्त संस्थान के अन्य प्रकाशन -

भरतबाहुबलिमहाकाव्यम् : प्रस्तुत ग्रन्थ पुण्यकुशलगणि द्वारा वि० स० १६४१ से १६५६ के मध्य विरचित एक सस्कृत-महाकाव्य है, जो अद्यावधि अप्रकाशित था। मात्र दो उपलब्ध हस्तप्रतियो के आधार पर इसका पाठ-सशोधन एव त्रुटित श्लोक-खण्डो की पूर्ति मुनि नथमलजी द्वारा सम्पन्न होकर इसका सर्वप्रथम सम्पादन मुनि दुलहराजजी द्वारा किया गया है तथा उनके मूलानुगामी हिन्दी-अनुवाद के साथ इसका प्रकाशन किया गया है।

भरत-बाहुबलि का जीवन बडा ही लोकप्रिय एव आह्लादकारी रहा है। जन-रुचि का ध्यान रखकर विभिन्न कवियो ने समय-समय तत्सम्बन्धी अनेक प्रासगिक अथवा स्वतन्त्र रचनाएँ लिखी हैं। सन् १५५१ ई० के लगभग कन्नड-कवि रत्नाकर वर्णी ने 'भरतेशवैभव' नामक एक महाकाव्य की रचना की थी। सुनते हैं कि उसके वर्ण्य विषय, शैली एव गेयता के कारण प्रसन्न होकर तत्कालीन किसी नरेश ने उस ग्रन्थ एव ग्रन्थकार की गाजे-बाजे के साथ श्रेष्ठ हाथी पर सवारी निकाली थी। प्रस्तुत महाकाव्य भी गुण एव परिमाण दोनो ही दृष्टियो से उसी श्रेणी का काव्य है।

प्रस्तुत काव्य मे १८ सर्ग एव ५३५ श्लोक हैं। इसमे सस्कृत के १५ प्रकार के छन्दो का प्रयोग किया गया है। ग्रन्थान्त मे अज्ञातकर्तृक सस्कृतपजिका, जो कि मात्र ११।७८ तक ही उपलब्ध है, सयुक्त कर दी गई है। प्रत्येक सर्ग के प्रारम्भ मे सम्पादक ने प्रतिपाद्य विषय, श्लोक-परिमाण, सलक्षण छन्दनाम तथा सर्ग-सक्षेप देकर अध्येताओ के लिए सर्गानुकूल भाव-भूमिका तैयार कर दी है। उसकी विस्तृत प्रस्तावना मे ग्रन्थ का मूल्याकन प्रस्तुत किया गया है। आवरण-पृष्ठ पर श्रवणबेल-गोल के बाहुबलि के रेखाचित्र ने ग्रन्थ के बाह्य सौन्दर्य को दीप्तिमान् कर दिया है। अच्छा हो कि ऐसी सर्वगुणसम्पन्न रचना विश्वविद्यालयो के पाठ्यक्रमो मे लाई जाय।

Theory of Atom in the Jaina Philosophy : श्री एस्० जवेरी द्वारा लिखित यह एक लघु-पुस्तिका है, जिसमे उन्होने जैनदर्शन मे स्वीकृत पुद्गल-द्रव्य का आधुनिक विज्ञानसम्मत Atomic Theory से तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। वैज्ञानिक चिन्तक ने आधुनिक मान्यताओ का गहरा अध्ययन किया है। प्राच्य एव पाश्चात्य दार्शनिको द्वारा वर्णित पुद्गल के विभिन्न रूपो की भी उन्होने गहरी छानबीन की है और सभी का तुलनात्मक अध्ययन कर अपने निष्कर्षो मे यह सिद्ध किया है कि आज के वैज्ञानिक जिस Atom सम्बन्धी सिद्धान्त को अत्याधुनिक खोज बतलाते हैं, जैनदर्शन मे उसे शताब्दियो पूर्व ही विस्तृत-रूपेण चित्रित किया जा चुका था।

अपने अध्ययन-प्रसंग मे श्रीजवेरी ने जैन एव अन्य दर्शनो तथा आधुनिक विज्ञान के मूल शब्दो का ही व्यवहार किया है। आवश्यकतानुसार, उन्होने वैज्ञानिक फार्मूले, गणितीय विवेचन एव तुलनात्मक मानचित्र भी प्रस्तुत किये हैं। इससे वर्ण्य विषय सहजग्राह्य हो सका है।

अपने इस तर्कसगत एव तुलनात्मक शोधकार्य के लिए श्रीजवेरी स्वागत के पात्र हैं। ऐसे अनुसन्धित्सुओ के लिए अपने शोधकार्यो को आगे बढाने के निमित्त शासन एव साधन-सम्पन्न शिक्षा-सस्थाओ की ओर से पूर्ण प्रोत्साहन मिलना चाहिए।

King Bimbasara and king Ajatasatru in the age of Mahavira and Buddha प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक मुनि श्रीनगराजजी ने महावीर एव बुद्धकालीन दो बहुचर्चित मगध-सम्राटो के विषय मे मूल प्राकृत एव पालि-आगम-साहित्य के आधार पर प्रामाणिक सन्दर्भ-सामग्री प्रस्तुत की है और विविध आगमिक प्रमाणो एव पर्याप्त ऊहापोह के बाद यह सिद्ध किया है कि उक्त दोनो नरेश भ० महावीर के अनुयायी थे। यद्यपि इस विषय पर डॉ० राइस डेविड्स एव वी० स्मिथ भी वर्षो पूर्व विचार कर चुके थे, तथापि मुनिश्री ने मूल स्रोतो का तलस्पर्शी अध्ययन कर उक्त विषयक अपने विचारो को अधिक प्रामाणिक एवं पुष्ट बनाया है। महावीर-कालीन, भारतीय इतिहास-लेखन मे अभी तक जो भ्रान्तियाँ रही हैं, उनके निवारण के लिए प्रस्तुत ग्रन्थ सहायक होगा, ऐसा पूर्ण विश्वास है।

श्रमणमहावीर : यह भ० महावीर के जीवन-दर्शन-सम्बन्धी शोधग्रन्थ है। इसके लेखक **मुनिश्री नथमलजी** ने अर्द्धमागधी-आगमग्रन्थो एव उनके टीका-ग्रन्थो मे उपलब्ध, चर्चित एव अचर्चित प्राय. सभी सन्दर्भो का इस ग्रन्थ मे सयोजन करने का प्रशसनीय प्रयास किया है। इस ग्रन्थ की सबसे बडी विशेषता यह है कि इसमे भ० महावीर के जीवन की ऐसी घटनाओ का भी आकलन है तथा उनका विश्लेषण आज

की ऐसी भाषा-शैली में किया गया है कि मानो आजकल प्रचलित बीससूत्री कार्यक्रमों की रूपरेखा महावीरकालीन ही रही हो तथा वर्तमान शासन ने उन्ही का समयानुकूल संशोधन-सम्पादन कर देश की सर्वांगीण उन्नति-हेतु उन्हें लागू किया हो। इस प्रकार के प्रसगो मे अपरिग्रह का वातायन, अभय का आलोक, आदिवासियो के बीच, प्रगति के सकेत, नारी का बन्ध-विमोचन, सेवा, जातिवाद, जनभाषा, जनता के लिए, सह-अस्तित्व, समन्वय की दिशा का उद्घाटन, सर्वजनहिताय सर्वजनसुखाय आदि प्रकरण पठनीय एव विचारणीय हैं। तीर्थंकर की माता के १७ स्वप्नो (पृ० स० २-३) का विचार अति नवीन है। चरित, इतिहास, संस्कृति, भूगोल, दर्शन, आचार, सिद्धान्त एव अध्यात्म का अद्‌भुत सयोजन एव औपन्यासिक शैली मे प्रस्तुत यह चरित-ग्रन्थ सभी क्षेत्रो मे समादर प्राप्त करेगा, ऐसी आशा है।

महावीर जैनविद्यालय, बम्बई के प्रकाशन

सन् १९१५ ई० मे सस्थापित इस विद्यालय ने जैनविद्या के विशेष एव प्रामाणिक प्रकाशन के क्षेत्र मे आदर्श कार्य किये हैं। मुनिश्री पुण्यविजयजी की प्रेरणा एव निर्देशन मे यहाँ से विशिष्ट श्रेणी के बनवाये हुए दीर्घजीवी-कागज पर सम्पूर्ण आगम-ग्रन्थो के प्रामाणिक मूल पाठो तथा अन्य सामान्य जैनविद्या-सम्बन्धी स्तरीयग्रन्थो के प्रकाशन की योजना है, जिसके अनुसार अभी तक नन्दीसूत्र और अनुयोगद्वारसूत्र (प्र० भा०) तथा पण्णवणासूत्र (द्वि० भा०), विजयवल्लभसूरि-स्मृतिग्रन्थ, हेमचन्द्र का काव्यानुशासन तथा श्रीमहावीर विद्यालय-सुवर्ण-महोत्सव ग्रन्थ (भा० १-२) प्रकाशित कर चुकने के बाद सन् १९७४ ई० मे वियाहपण्णत्तिसुत्त (प्र० ख०) का प्रकाशन किया गया है तथा आचारांग, सुयगडग, उत्तराध्ययन एव दशवैकालिकसूत्र यथाशीघ्र प्रकाश्यमान हैं।

वियाहपण्णत्तिसुत्त के उक्त खण्ड मे ९ शतक है, जिनका सम्पादन प० बेचरदासजी दोशी अहमदाबाद ने किया है। उसमे उन्होंने प्राचीन चार हस्तप्रतियो तथा कुछ सशोधित-मुद्रित प्रतियो के आधार पर पाठ-सशोधन कर उक्त ग्रन्थ का सम्पादन किया है। पाठो की प्रामाणिकता एव उपयोगी आवश्यक पाद-टिप्पणियो के कारण यह ग्रन्थ प्रामाणिक सस्करणो की श्रेणी मे अग्रस्थान प्राप्त करेगा, ऐसी आशा है।

सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा के प्रकाशन

उपाध्याय श्रीअमर मुनिजी के निर्देशन मे उक्त संस्थान ने जैनविद्या के विविध अगो पर अच्छे प्रकाशन किये हैं। अभी हाल मे वहाँ से दो विशिष्ट ग्रन्थो का प्रकाशन हुआ है: १ प्रश्नव्याकरण सूत्र: जिसमे प्रामाणिक मूलपाठ, सं० छा०

पदार्थान्वय, मूलार्थ तथा विस्तृत व्याख्या के साथ वर्गीकृत-शब्द-सूची प्रस्तुत की गई है। आरम्भ मे, अमरमुनिजी की शोध-पूर्ण प्रस्तावना है, जिसमे इस ग्रन्थ के विविध पक्षो पर समीक्षात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

२ उक्त ज्ञानपीठ का दूसरा प्रकाशन है—**जैन अगशास्त्रों के अनुसार मानव-व्यक्तित्व का विकास**, जिसके लेखक **डॉ० हरीन्द्रभूषण जैन** (विक्रम-वि० वि०, उज्जैन) ने अर्द्धमागधी-आगम के अग-साहित्य के आधार पर मानव के आध्यात्मिक विकास की क्रमिक श्रेणियो का मार्मिक विवेचन प्रस्तुत किया है। अपने विषय की यह सर्वप्रथम कृति मौलिक, अनूठी एव शोध के विविध पक्षो के उद्घाटन के लिए प्रवेश-द्वार का कार्य करती है।

श्रीगणेश वर्णी दि० जैन सस्थान, वाराणसी के प्रकाशन

उक्त सस्थान की स्थापना जैनविद्या के विविध अगो पर गम्भीर शोध एव प्रकाशन-कार्य-हेतु **प० फूलचन्द्रजी शास्त्री** द्वारा सन् १९७२ ई० मे की गई थी। इस अल्पावधि मे ही उसने सराहनीय कार्य किये हैं। सन् १९७४-७५ ई० मे सस्थान के तत्वाववान मे **श्रीनिशानन्द शर्मा** ने 'प्राचीन जैनसाहित्य मे वर्णित जैनशिक्षा-पद्धति' पर एक शोध-प्रबन्ध तैयार किया, जिसपर उन्हे अभी हाल मे पटना-विश्वविद्यालय से पी-एच्० डी० की उपाधि प्राप्त हुई है।

भ० महावीर के २५००वें निर्वाण-महोत्सव के अवसर पर सस्थान ने **प्रो० उदयचन्द्र जैन** (बी० एच्० यू०) द्वारा लिखित **आप्तमीमासा-तत्त्वदीपिका** नामक एक शोध-ग्रन्थ का प्रकाशन किया है, जिसकी प्रशसा अनेक प्रमुख दार्शनिको ने की है। इसके *अध्ययन से यह* स्पष्ट विदित होता है कि ग्रन्थकार ने समग्र भारतीय दर्शनो के मूल रहस्यो को दृष्टि मे रखते हुए जैनदर्शन की तलस्पर्शी विशद व्याख्या प्रस्तुत की है। इससे आचार्य समन्तभद्र की मूल्यवान् कृति 'आप्तमीमासा' का यथार्थ एव प्रामाणिक मूल्याकन तो हुआ ही, साथ ही 'अष्टसहस्री' जैसे दुरूह ग्रन्थ मे पैठने के लिए एक प्रवेश-द्वार भी तैयार हो गया है।

अ० भा० दि० जैन विद्वत्परिषद्, सागर, मध्यप्रदेश के प्रकाशन

तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य-परम्परा प्रस्तुत शोधकृति डॉ० **नेमिचन्द्र शास्त्री** (आरा) के जीवन की, जैनविद्या के प्रति अन्तिम श्रद्धाजलि है। इसके चार खण्डो मे से प्रथम खण्ड मे प्रामाणिक स्रोतो के आधार पर महावीर-युग की विभिन्न परिस्थितियो का दिग्दर्शन-विवेचन, महावीर का जीवन-वृत्त तथा उनकी देशना का सागोपाग वर्णन किया गया है। द्वि० ख० मे भ० महावीर के उत्तराधिकारी श्रुतधराचार्यों (गौतम गणधरादि) एव समन्तभद्रादि सारस्वताचार्यो का

सविशेष इतिवृत्त प्रस्तुत किया गया है। तृ० ख० मे जिनसेन आदि प्रवुद्धाचार्यो एव प्रभाचन्द्रादि परम्परा-पोषक ५० आचार्यों का सप्रमाण विस्तृत परिचय प्रस्तुत किया गया है। अन्तिम चतुर्थ खण्ड मे सस्कृत, अपभ्रश, प्राकृत, हिन्दी एव देशज भाषा के जैनकवियो तथा इतिहास की सामग्री पट्टावलियों आदि को प्रस्तुत किया गया है। चारो खण्डो की कुल पृ० स २०१६ है।

इतने विस्तृत एव प्रामाणिक इतिहास-ग्रन्थ का लेखन जैनविद्या के अनुसन्धित्सुओ के लिए एक अत्यन्त उत्साहवर्द्धक विषय है। डॉ० शास्त्री ने पूर्व-प्रकाशित एव विवेचित सामग्री के सदुपयोग के साथ-साथ किन्ही अज्ञात कारणो से अद्यावधि अप्रकाशित, उपेक्षित, धूमिल तथा लुप्तप्राय अथवा विस्मृत अनेक तथ्यो को भी प्रकाशित कर एक महान् ऐतिहासिक कार्य किया है। जैन इतिहास, सस्कृति, भूगोल, धर्म, दर्शन, आचार, अध्यात्म, शिल्प एव स्थापत्य-सम्वन्धी सामग्री का एक साथ चित्रण होने से यह ग्रन्थ जैनविद्या का विश्वकोश वन गया है।

महावीर-भवन दि० जै० अ० क्षेत्र महावीरजी, जयपुर के नव्य प्रकाशन

महावीर-भवन भारत के उन इने-गिने शोध-सस्थानो मे है, जिसने आधुनिक शोधकार्यों के लिए आधारभूत सन्दर्भ-सामग्री का सकलन किया है। आज सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश, राजस्थानी, हिन्दी, गुजराती आदि के क्षेत्र मे जो भी शोधकार्य हो रहे हैं, उनमे शायद ही कोई ऐसा कार्य हो, जिसमे महावीर-भवन का सक्रिय सहयोग न रहा हो। उसने राजस्थान के प्रमुख हस्तलिखित ज्ञान-भाण्डारो की वर्गीकृत सूचियो एव प्रशस्तियो का प्रकाशन कर साहित्य-जगत् मे आदर्श-कार्य किया है। उसके नवीन प्रकाशनो मे 'तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर', 'प० चैनसुखदास-स्मृतिग्रन्थ' एव 'वचनदूतम्' प्रमुख हैं।

वचनदूतम् प० मूलचन्द्र शास्त्री (मालथौन, सागर, मध्यप्रदेश) द्वारा प्रणीत, सस्कृत के मन्दाक्रान्ता-छन्द मे लिखित मेघदूत एव पार्श्वाभ्युदय-शैली का दूतकाव्य है। इसमे मेघदूत के पद्यो के चतुर्थ पाद की समस्या-पूर्ति के साथ राजुल की अन्तर्वेदना का मार्मिक चित्रण किया गया है। शताब्दियो के वाद एतादृश परम्पराशील रचना देखकर ऐसा विश्वास होने लगा है कि सस्कृत मे सर्जनात्मक साहित्य की गति मन्द भले ही पड गई है, किन्तु अभी सर्वथा समाप्त नही हुई है।

दि० जैन त्रिलोक शोध-संस्थान, हस्तिनापुर के नवीन प्रकाशन

अष्टसहस्री (प्र० भा०) सुप्रसिद्ध तार्किक विद्यानन्दि-कृत यह रचना वस्तुत अपनी वश-परम्परा की चतुर्थ पीढी की समृद्ध सन्तति है। आचार्य उमास्वाति के

'मोक्षमार्गस्य नेतारं' के आधार पर आचार्य समन्तभद्र ने 'देवागमनभोयान' आदि पद्यारम्भ कर अपने ११४ कारिका-प्रमाण 'देवागमस्तोत्र' (अपरनाम 'आप्त-मीमासा') की रचना की, इस आप्तमीमासा पर भट्टाकलक ने ८०० श्लोक-प्रमाण 'अष्टशती' नामक टीका लिखी। इस अष्टशती टीका को वेष्टित कर आचार्य विद्यानन्दि ने उक्त देवागम (आप्तमीमासा) पर आठ सहस्र श्लोकाक्षर-प्रमाण 'अष्टसहस्री' का प्रणयन किया। इस प्रकार, इस ग्रन्थ मे आचार्य उमास्वाति के काल से आचार्य विद्यानन्दि के काल तक की, जैनदर्शन एव प्रसगप्राप्त अन्य भारतीय दर्शनो की क्रमिक विकासधारा का स्पष्ट दर्शन होता है। जैनदर्शन के इतिहास की दृष्टि से ही नही, बल्कि समस्त भारतीय दर्शनो के इतिहास की दृष्टि से भी यह ग्रन्थ अपना विशेष महत्त्व रखता है।

उक्त 'अष्टसहस्री' एक प्रौढ तार्किक शैली का ग्रन्थ होने के कारण 'कष्टसहस्री' की सज्ञा प्राप्त किये हुए है। अपनी दुरूह भाषा-शैली के कारण वह सामान्य पठन-पाठन के क्षेत्र मे अधिक लोकप्रियता नही प्राप्त कर सकी। इसका सर्वप्रथम प्रकाशन सन् १९१५ ई० मे आकलूज (महाराष्ट्र) से हुआ था और उसी समय से इसके हिन्दी-अनुवाद की आवश्यकता का अनुभव किया जा रहा था, किन्तु वैसा नही ही हो सका। साध्वी ज्ञानवतीजी ने अप्रत्याशित रूप से इस कार्य को प्रारम्भ ही नही किया, अपितु अपनी सतत साधना, एकनिष्ठ एव अटूट धैर्य तथा साहस के बल पर इस कार्य को सम्पन्न किया है। उनके इस कार्य ने तज्ज्ञ दार्शनिको एव तत्त्वजिज्ञासुओ को आश्चर्य-चकित कर दिया है।

उक्त ग्रन्थभाग मे अभी देवागम की मात्र छह कारिकाओ का ही हिन्दी-अनुवाद हो पाया है। शेष भाग पर आगे कार्य होकर शीघ्र प्रकाशित होगा, ऐसा पूर्ण विश्वास है।

ग्रन्थ का अन्तरग जितना उच्च एव गम्भीर है, तदनुकूल यदि उसकी तुलनात्मक तथा समीक्षात्मक प्रस्तावना भी तैयार की गई होती, तो इससे शोधार्थियो के लिए पर्याप्त सहायता मिलती। आशा है, साध्वीजी आगे चलकर उस कार्य को भी सम्पन्न करेगी।

उक्त सस्थान ने उक्त ग्रन्थ के अतिरिक्त भी अनेक ग्रन्थो का प्रकाशन किया है, जिनमे 'त्रिलोकभास्कर', 'जैनज्योतिर्लोक', 'न्यायसार' आदि प्रमुख हैं।

राजकीय प्राकृत शोध-संस्थान, वैशाली के प्रकाशन

रइधू-साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन : महाकवि रइधू अपभ्रंश-साहित्य के जाज्वल्यमान नक्षत्र हैं। विपुल साहित्य-रचनाओं की दृष्टि से उनकी

तुलना मे अन्य प्रतिस्पर्धी कवियो या साहित्यकारो के अस्तित्व की कल्पना अपभ्रंश-साहित्य मे नही की जा सकती। अभी तक उनके २३ हस्तलिखित ग्रन्थ मिल सके हैं, जो अप्रकाशित थे। डॉ० राजाराम जैन (आरा, बिहार) ने उन्ही उपलब्ध कृतियो का सर्वप्रथम परिशीलन उक्त ग्रन्थ मे किया है। उसमे लगभग ८४० पृष्ठ हैं, जिसके ६ अध्यायो मे से प्रथम अध्याय मे अपभ्रंश-भाषा का उद्गम एवं प्रकाश, रइधू-साहित्य की पृष्ठभूमि तथा रइधू-साहित्य की प्रशस्तियो के आधार पर कवि का जीवन-वृत्त, पूर्ववर्ती एव समकालीन साहित्य एव साहित्यकार, भट्टारक, राजा, नगरसेठ आश्रयदाता एव गोपाचल नगर-सम्बन्धी सामग्री पर प्रकाश डाला गया है। शेष अध्यायो मे रचनाओ का काव्यशास्त्रीय एव सास्कृतिक मूल्यांकन किया गया है। ग्रन्थान्त मे रइधू-साहित्य मे प्राप्त ऐतिहासिक महत्त्व की कुछ प्रशस्तियो, रइधू-साहित्य के सचित्र एव अचित्र ग्रन्थो के ५६ दुर्लभ चित्र एव वर्गीकृत शब्दानुक्रमणिका प्रस्तुत की गई है। इस ग्रन्थ के प्रकाशन से अपभ्रंश-साहित्य के अध्ययन का क्षेत्र-विस्तार तो हुआ ही, साथ ही हस्तलिखित अप्रकाशित ग्रन्थ-सम्बन्धी नवीन शोधकार्यो के लिए दिशा-निर्देश मिलने की भी सम्भावनाएँ बढी हैं।

रिसर्च बुलेटिन न० २ : प्रस्तुत शोध-बुलेटिन उक्त सस्थान के सस्थापक-निदेशक स्वर्गीय डॉ० हीरालाल जैन की पुण्यस्मृति में प्रकाशित की गई है। इसमे अनेक विद्वानो की डॉ० जैन के प्रति समर्पित श्रद्धाजलियो के साथ-साथ अनेक शोध-निबन्धो का भी प्रकाशन किया गया है। इनमे से Satkhandagama and Prajnaptisutra (Dr H L Jain), Jayasena The auther of Dharma-ratnakara (Dr A N Upadhye), Prakrit studies Some problems and solutions (Dr G C Chaudhury), Contributions of western scholars to oriental studies (Dr G C Chaudhury) A Rare Ms of Vada-Rahasya (Dr G C Chaudhury), Defining the Pramana (Dr R C. Dwivedi), सतकम्मपाहुड और छक्खडागम (पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री, वाराणसी), सिद्ध-साहित्य का मूलस्रोत (डॉ० नागेन्द्र प्रसाद,), सन्तकवि रइधू और उनका साहित्य (डॉ० राजाराम जैन, आरा), भ० महावीर का एक पूर्वभव (डॉ० के० आर० चन्द्र, अहमदाबाद), जैन नाटककार हस्तिमल्ल का समय (डॉ० कनछेदीलाल जैन), विदेशी विद्वानो का जैनविद्या को योगदान (डॉ० प्रेम सुमन जैन), जैनदर्शन और तर्क की आधारभूमि प्रमाण (आचार्य श्रीरंजन सूरिदेव, पटना), जैन तर्कशास्त्र मे निर्विकल्पक ज्ञानप्रमाण की मीमासा (प्रो० लालचन्द जैन), Opinions of Rajshekhara as a critic (Dr R P. Poddar) आदि निबन्ध महत्त्वपूर्ण हैं तथा शोध के क्षेत्र में नवीन सन्दर्भ-सामग्री प्रस्तुत करने मे सक्षम हैं।

कुवलयमाला-कथा का सास्कृतिक अध्ययन · कुवलयमाला-कथा भारतीय कथा-साहित्य का एक अमूल्य ग्रन्थ माना जाता है। इसके प्रणेता **आचार्य उद्योतन सूरि** (सन् ७७९ ई०) ने इस रचना को ज्ञान-विज्ञान का कोष कहा है, जो उपयुक्त ही है।

प्रस्तुत ग्रन्थ, उसके लेखक **डॉ० प्रेम सुमन जैन** (उदयपुर-वि० वि०) के गम्भीर अध्ययन, अथक परिश्रम एवं धैर्य का उज्ज्वल प्रतीक है। **डॉ० जैन** के उक्त महत्त्वपूर्ण शोधकार्य के अतिरिक्त 'अपभ्रश-काव्यधारा' (अहमदाबाद, सन् १९७५ ई०), 'प्राकृत-काव्य सौरभ' (उदयपुर, सन् १९७५ ई०) 'चितेरो के महावीर' (उदयपुर, सन् १९७५ ई०) भी प्रकाशित हो चुके हैं।

जीवराज-ग्रन्थमाला, शोलापुर के अभिनव प्रकाशन

रइधू-ग्रन्थावली (प्र० भा०) : अपभ्रश के महाकवि रइधू (१५-१६वी सदी) का समग्र उपलब्ध साहित्य अद्यावधि अप्रकाशित है। चूँकि आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओ के भाषावैज्ञानिक अध्ययन की दृष्टि से उक्त साहित्य अपना विशेष महत्त्व रखता है, इस कारण स्वर्गीय **प्रो० डॉ० ए० एन्० उपाध्ये** की प्रेरणा से **डॉ० राजाराम जैन** ने उसके सम्पादन, अनुवाद एव मूल्याकन करने का उत्तरदायित्व स्वीकार किया है और वह रइधू-ग्रन्थावली के नाम से १६ खण्डो मे उक्त ग्रन्थमाला की ओर से प्रकाशित होने जा रहा है।

उक्त प्रथम भाग मे पासणाहचरिउ, धण्णकुमारचरिउ एव सुकोसलचरिउ नामक ग्रन्थो की प्राचीन प्रतियो के आधार पर पाठ-सशोधन, सम्पादन, हिन्दी-अनुवाद एव शोधपूर्ण विस्तृत प्रस्तावना प्रस्तुत की गई है। ग्रन्थावली का द्वितीय भाग आधा छप चुका है तथा अगले खण्डो की तैयारी चल रही है।

पार्श्वनाथ जैन विद्याश्रम शोध-संस्थान, वाराणसी के प्रकाशन

A cultural study of the NISITHA-CURNI निशीथचूर्णि अर्द्धमागधी-आगमसाहित्य के छेदसूत्रान्तर्गत निशीथ पर लिखित वि० सं० की सातवी सदी का एक टीका-ग्रन्थ है। जैनसिद्धान्त एवं आचार की दृष्टि से तो उसका अपना महत्त्व है ही, किन्तु प्रासगिक रूप मे वर्णित ऐतिहासिक, सास्कृतिक, साहित्यिक एव राजनीतिक सामग्री की दृष्टि से भी यह ग्रन्थ अनुपम है। इसकी भाषा भी भाषावैज्ञानिक अध्ययन की दृष्टि से अपना विशेष महत्त्व रखती है।

उक्त ग्रन्थ सन् १९५९ ई० तक उपेक्षित एवं अप्रकाशित ही था। डॉ० जगदीशचन्द्र जैन (बम्बई) ने उसके मूल्यांकन-सन्दर्भ मे सर्वप्रथम उसकी सांस्कृतिक समृद्धि की ओर विद्वानो का ध्यान आकृष्ट किया था। तत्पश्चात् सन् १९६० ई० मे सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा से प० दलसुखभाई मालवणिया की विस्तृत प्रस्तावना के साथ सर्वप्रथम उसका मूल भाग प्रकाशित हुआ।

डॉ० मधु सेन ने उक्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का गहन अध्ययन कर उसकी सांस्कृतिक सम्पदा का विशद विवेचन कर ऐतिहासिक महत्व का कार्य किया है। चूंकि, यह ग्रन्थ एक टीकाग्रन्थ है, इसलिए इसमे दो प्रकार की सामग्री का प्राप्त होना स्वाभाविक है। प्रथम, चूर्णि के लिखने के पूर्व की सामग्री तो चूर्णिकार को परम्परा से प्राप्त हुई और दूसरे, लोक-प्रचलित सामग्री से। लेखिका ने सावधानीपूर्वक उनका विभाजन कर तदनुसार ही अपना अध्ययन प्रस्तुत किया है। इस ग्रन्थ में, आठ अध्याय हैं, जिनमे ग्रन्थ एव ग्रन्थकार (जिनदासगणि) का परिचय देने के बाद तत्कालीन नीति एव प्रशासन, सामाजिक, सांस्कृतिक एव आर्थिक जीवन, शिक्षा एव साहित्य, ललित कलाएँ एवं जीवन-दर्शन पर सप्रमाण विवेचन प्रस्तुत किया है। परिशिष्टो मे रोगो के नाम तथा भौगोलिक सामग्री की भी सूचनाएँ दी गई हैं। इस ग्रन्थ के प्रकाशित होने से शोधार्थियो एव तत्त्वजिज्ञासुओ की चिराकांक्षित कृति सम्मुख आई है। इसे इस वर्ष की विशेष कृति के रूप मे समादर मिलेगा, ऐसा विश्वास है।

। जैनधर्म-दर्शन . इस महत्त्वपूर्ण तथा मूल्यवान् ग्रन्थ के माध्यम से इसके सुप्रसिद्ध लेखक डॉ० मोहनलाल मेहता ने दार्शनिक जगत् को अपने दीर्घकालीन शोध निष्कर्ष प्रदान कर प्रशंसनीय कार्य किया है। ग्रन्थ के सात अध्यायो मे जैन परम्परा का इतिहास, जैनधर्मदर्शन का साहित्य, तत्त्वविचार, ज्ञानमीमांसा, सापेक्षवाद, कर्मसिद्धान्त एव आचार-शास्त्र पर तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया है। डॉ० मेहता का यह विचार सचमुच ही विचारणीय है "सिन्धु-सभ्यता का समय ई० पू० ३००० माना जाता है। यह वैदिक काल मे प्रचलित आर्य-सभ्यता से भिन्न है। तुलना के आधार पर यह प्रतीत होता है कि दोनो सभ्यताओ मे तादात्म्य-सम्बन्ध नही था। वैदिक धर्म सामान्यत अमूर्त्तिवादी है, परन्तु मोहनजोदडो और हडप्पा मे मूर्त्तिवाद की झलक स्पष्ट दीखती है। मोहनजोदडो के घरो मे वेदिका का अभाव दिखाई देता है। साथ ही, वहाँ बहुत-से नग्न चित्र तथा नग्न मूर्त्तियाँ भी मिली हैं जिन्हें तपस्वी योगियो के चित्र अथवा मूर्त्तियाँ माना जा सकता है। मूर्त्तिवाद और नग्नता जैन-संस्कृति की प्रमुख विशेषताएँ हैं।" (पृ० ४)

वीर-निर्वाण-भारती, इन्दौर के प्रकाशन

मुनिश्री विद्यानन्दजी उपाध्याय के प्रयास से ४-५ वर्ष पूर्व सस्थापित इस सस्थान ने अल्पकाल मे भी पर्याप्त उत्साहवर्द्धक कार्य किया है। उसने लगभग पन्द्रह-सोलह ग्रन्थो का प्रकाशन किया है, जिनमे से कुछ इस प्रकार हैं :

ब्राह्मी : विश्व की मूललिपि : इसके लेखक **डॉ० प्रेमसागर जैन** (बडौत) ने अनेक प्रमाणो के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि ब्राह्मी-लिपि का नाम आद्य तीर्थंकर **ऋषभदेव** की ज्येष्ठा पुत्री ब्राह्मी के नाम पर पडा। सामाजिक विद्याओ एव सस्थाओ के आद्य प्रेरक भ० ऋषभ का स्मरण स्वय ऋग्वेदादि प्राचीन वैदिक साहित्य मे होने से वे प्राग्वैदिक सिद्ध होते हैं और इसी आधार पर ब्राह्मी-लिपि भी प्राग्वैदिक सिद्ध होती है। सिन्धु-घाटी की खुदाई मे जो लेख मिले हैं, उनकी लिपि को पुरालिपि-वेत्ताओ ने ब्राह्मी-लिपि कहा ही है। सिन्धु-घाटी, वडली तथा अशोक एव खारवेल के अभिलेखो की लिपि को देखकर यह स्पष्ट है कि ब्राह्मी-लिपि समस्त भारत ही नही, अपितु भारत के बाहर भी मान्य एव प्रचलित थी।

पुरालिपि मे अभिरुचि रखनेवाले शोधक विद्वानो को चाहिए कि डॉ० जैन के निष्कर्षों के खण्डन अथवा मण्डन मे अपने विचार सप्रमाण प्रस्तुत करे। यहाँ तो यही कहा जा सकता है कि डॉ० जैन ने एतद्विषयक कौमार्य को खण्डित कर एक स्तुत्य कार्य किया है, जिसकी हृदय से श्लाघा की जानी चाहिए।

भरत और भारत प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक **डॉ० प्रेमसागर जैन** ने भारतीय ऐतिहासिक सामग्री के मूलस्रोतो के आधार पर सिद्ध किया है कि भारतवर्ष का नाम ऋषभपुत्र भरत के नाम पर हुआ। उनके अनुसार, उक्त तथ्य मात्र जैनसाहित्य से ही सिद्ध नही है, अपितु ऋग्वेद, अथर्ववेद, अग्निपुराण, मार्कण्डेयपुराण प्रभृति वैदिक साहित्य से भी सिद्ध है। डॉ० जैन के विचारोत्तेजक तथ्यो पर सचमुच ही विद्वानो को अपनी धारणा व्यक्त करनी चाहिए।

रयणसार · आगम-परम्परा के सवाहक **आचार्य कुन्दकुन्द**-कृत प्रस्तुत 'रयणसार' के पूर्व मे भी अनेक सस्करण निकल चुके हैं, किन्तु **मुनि विद्यानन्दजी** की प्रेरणा से **डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री** (नीमच) द्वारा सम्पादित एव अनूदित यह ग्रन्थ प्रामाणिक पाठो की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है। डॉ० जैन की वैदुष्य-विमण्डित लेखनी से प्रसूत तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक प्रस्तावना से यह सस्करण अपेक्षाकृत अधिक मूल्यवान् बन गया है। इस ग्रन्थ के माध्यम से शौरसेनी-आगम-साहित्य की श्री-समृद्धि का विस्तार हुआ है, इसके लिए सम्पादक बधाई के पात्र हैं।

नेमिदूतकाव्य महाकवि विक्रम-कृत उक्त काव्य की सरसता एव लोकप्रियता इसी से व्यक्त है कि इसे दिगम्बर एव श्वेताम्बर ये दोनो सम्प्रदाय अपनी-अपनी

परम्पराओ की कृति मानते हैं। विक्रम कवि के समय के विषय मे विभिन्न मान्यताएँ हैं, जिनके अनुसार उनका समय १३वी से १६वी सदी के मध्य कभी रहा है।

इस ग्रन्थ मे कुल १२६ पद्य है, जिनमे कालिदास-कृत मेघदूत के चतुर्थ चरण की समस्यापूर्ति के रूप मे तीर्थंकर नेमि का चरिताकन किया गया है। इसमे शान्त रस प्रधान होते हुए भी विरह-भावना का सजीव एव सागोपाग चित्रण हुआ है। प्रस्तुत सस्करण की यह विशेषता है कि इसमे **श्रीलक्ष्मण अमरजी भट्ट**-कृत समश्लोकी हिन्दी-पद्यानुवाद के साथ इसे प्रकाशित किया गया है।

अनुत्तर योगी : तीर्थंकर महावीर भ० महावीर के जीवन-दर्शन पर आधृत यह एक ऐसा उपन्यास है, जिसमे उसके प्रणेता **श्रीवीरेन्द्रकुमार जैन** (बम्बई) ने परम्परा, इतिहास एव कुछ कल्पनाओ का समन्वय कर महावीर के विराट् व्यक्तित्व का सजीव चित्रण किया है। इसकी भाषा-शैली प्रसगानुकूल, स्वाभाविक एव हृदयस्पर्शी है। शाश्वत-साहित्य की कोटि का कवित्वमय यह ग्रन्थ निस्सन्देह ही एक नवीन परम्परा का दीपस्तम्भ बनेगा। ग्रन्थकार ने परिशिष्ट मे उन प्रस्थान-बिन्दुओ एव मुद्दो का स्पष्टीकरण कर दिया है, जिनसे पाठको को भ्रान्तियो हो सकती हैं अथवा कोई प्रश्न या विवाद उठ खडे हो सकते हैं। वस्तुत', यह ग्रन्थकार की साहित्यिक ईमानदारी है, जो अनुकरणीय है।

वैशाली के राजकुमार ' उपन्यास-शैली का, भ० महावीर का यह इतिवृत्त अभी तक के प्रकाशित इतिवृत्तो मे विशिष्ट है, क्योकि इसमे इतिहास की आस्था, पुराण की प्रेरणा, शलाकापुरुष का बहु-आयामी व्यक्तित्व एव इन माध्यमो से जैन-दर्शन के विविध पक्षो का मौलिक चिन्तन सरस, सरल एवं सहजग्राह्य भाषा-शैली मे चित्रित हुआ है। कृतिकार **डॉ० नेमिचन्द्र जैन** (इन्दौर) की सुघड लेखनी का अद्भुत चमत्कार प्रस्तुत कृति मे रूपायित है।

मुनिश्री विद्यानन्दजी उपाध्याय-कृत ग्रन्थ

मुनिश्री विद्यानन्दजी उपाध्याय आधुनिक-युग के प्राकृत एवं जैनविद्या के महामनीषी, लेखक, प्रचारक एवं प्रेरक सन्त हैं। उनकी प्रेरणा से प्राचीन साहित्य के उद्धार एव उसके मूल्याकन तथा प्रकाशन-हेतु अनेक सस्थाओ ने तो जन्म लिया ही, साथ ही परम्परागत सस्थाओ को उक्त कार्य-हेतु नवीन प्रेरणाएँ मिली हैं। एकान्त-प्रिय अनेक साहित्यसेवियो के लिए सार्वजनिक सम्मान-पुरस्कार की योजना कर उन्होने उन्हें कार्यरत रहने के लिए नवीन उत्साह प्रदान किया है। इन सबके साथ-साथ मुनिश्री स्वय भी गम्भीर दार्शनिक, विचारक, लेखक एव कवि हैं। उन्होने महत्त्वपूर्ण ग्रन्थो का प्रणयन किया है, जिनमे से 'पिच्छि-कमण्डलु' (अध्यात्म, दर्शन

एवं संस्कृति-सम्बन्धी १८ शोध-निबन्धों का संग्रह), 'श्रमण-संस्कृति एवं दीपावली', 'अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग', 'सप्तव्यसन', 'निर्मल आत्मा ही समयसार', 'तीर्थंकर-वर्द्धमान' आदि ग्रन्थ प्रमुख हैं। इन सभी का प्रकाशन उक्त वी० नि० भा० संस्थान से हुआ है। मुनिश्री इस समय शौरसेनी-आगमग्रन्थों का पुनः पाठ-संशोधन, पुनर्मूल्याकन एवं अत्याधुनिक शैली से उनके पुनः प्रकाशन की योजना बना रहे हैं। हमें विश्वास है कि वे शीघ्र ही उस योजना को रचनात्मक रूप देकर प्राकृत एवं जैनविद्या के भाण्डार को समृद्ध करेंगे।

भू-भ्रमण-शोध-संस्थान, कपड़वंज (गुजरात) के प्रकाशन

मुनिश्री अभयसागर गणि के निर्देशन में उक्त संस्थान जैन मान्यताओं के सन्दर्भ में आधुनिक भूगोल एवं खगोल-विद्या का तुलनात्मक अध्ययन कर रहा है। जैन मान्यता में जहाँ पृथिवी को स्थिर तथा सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, तारे आदि को उनकी परिक्रमा करनेवाला बताया गया है, वहाँ आधुनिक विज्ञानशास्त्री उसका ठीक विपरीत वर्णन करते हैं। मुनिश्री के मूल आधार केवल शास्त्रीय प्रमाण हैं, जबकि आधुनिक विज्ञान ने अपने दीर्घकालीन प्रयोगों के आधार पर अपनी मान्यताएँ स्थापित की हैं। फिर भी, उक्त संस्थान अपने मत के समर्थन में कटिबद्ध है। अभी तक वहाँ से अँगरेजी, हिन्दी एवं गुजराती में लगभग २० लघु-पुस्तिकाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख के नाम इस प्रकार हैं भूगोलविज्ञान-समीक्षा, क्या पृथ्वी का आकार गोल है?, पृथ्वी की गति एक समस्या, पृथ्वी का आकार-निर्णय, भूगोल भ्रम-भंजनी आदि।

अन्य प्रमुख प्रकाशन

समणसुत्तं जैनागम-साहित्य की इतिहास-प्रसिद्ध पाटलिपुत्र, मथुरा एवं वलभी की वाचनाओं के बाद २९-३० नवम्बर, १९७४ ई०, को दिल्ली में आयोजित चतुर्थ संगीति जैनविद्या के इतिहास की स्वर्णिम घटना मानी जायगी, क्योंकि प्रथम तीन वाचनाएँ श्रमण-सम्प्रदाय के एक वर्ग को मान्य नहीं थी और लगभग १५०० सौ वर्षों से दिगम्बर एवं श्वेताम्बरों में अलगाव की दुःखद स्थिति चली आ रही थी। उक्त ग्रन्थ ने उसे दूर कर पुनः दोनों सम्प्रदायों का समन्वय करके ऐतिहासिक कार्य किया है।

समन्वय का प्रतीक उक्त 'समणसुत्त' भ० महावीर के २५००वें निर्वाण-महोत्सव की सर्वप्रथम उपलब्धि मानी गई है। सर्वोदयी सन्त **विनोबा भावे** की मूलप्रेरणा से इसे सर्वप्रथम क्षुल्लक जिनेन्द्रवर्णी ने दिगम्बर एवं श्वेताम्बर-परम्परा के आगम-ग्रन्थों

से कुछ सारभूत गाथाओ का संकलन किया, तत्पश्चात् सन्त कानजी स्वामी, दल-सुखभाई मालवणिया आदि ने उसका सशोधन कर उसे 'जिणवम्म' नाम दिया। उसका भी डॉ० उपाध्ये, उपाध्यायश्री मुनिश्री विद्यानन्दजी, मुनिश्री सुशील-कुमारजी प्रभृति सन्तो एव मुनियो के सान्निध्य मे वाचन कर उसे अन्त मे 'समणसुत्त' नाम दिया गया। इसमे शौरसेनी एव अर्द्धमागधी-आगमग्रन्थो से विविध-विषयक ७५६ निर्विवाद आर्षगाथाओ का सकलन किया गया तथा इन्हे विषय-क्रमानुसार ज्योतिर्मय, मोक्षमार्ग, तत्वदर्शन एव स्याद्वाद नामक चार खण्डो और ४४ प्रकरणो मे विभक्त किया गया है। इसका मूलानुगामी-हिन्दी अनुवाद पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्री, वाराणसी तथा मुनिश्री नथमलजी महाराज एव स० छा० प० बेचरदासजी दोशी, अहमदाबाद द्वारा प्रस्तुत है। श्रीकृष्णराज मेहता, सचालक सर्वसेवा सघ, वाराणसी ने इस कार्य के सयोजन और इसके प्रकाशन मे जो प्रशस्य प्रयास किया है, वह चिरस्मरणीय रहेगा।

जैनधर्म का प्राचीन इतिहास (द्वि० भा०) पं० परमानन्दजी शास्त्री (दिल्ली) द्वारा लिखित यह ग्रन्थ जैन-साहित्य के इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमे लेखक ने महावीर-कालीन, परिस्थितियाँ, अन्तिम केवली तथा श्रुतकेवली-परम्परा, सघभेद एव उनका परिचय, तत्पश्चात् ई० पू० तीसरी सदी के विद्वानो एव आचार्यो की परम्परा से ग्रन्थारम्भ कर सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश, कन्नड, तमिल, राजस्थानी एव हिन्दी के लगभग ५३३ कवियो का सप्रमाण इतिवृत्त प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत ग्रन्थ मे अनेक ऐसे कवियो की भी चर्चा की गई है, जो साहित्य-जगत् के लिए अपरिचित अथवा उपेक्षित थे। लेखक ने अपने अथक परिश्रम से उनका तथा अनेक ज्ञात-अज्ञात एव विस्मृत कवियो तथा उनके साहित्य का सागोपाग सक्षिप्त अध्ययन प्रस्तुत किया है। जैनविद्या के क्षेत्र मे यह महनीय कार्य समादृत होगा, ऐसा विश्वास है।

प्रतिमा-विज्ञान · श्रीबालचन्द्र जैन (उप-निदेशक, पुरातत्त्व एव सग्रहालय, मध्यप्रदेश, जबलपुर) ने जैनकला—विशेष रूप से जैनमूर्त्तिकला-सम्बन्धी समग्र उपलब्ध साहित्य का गम्भीर अध्ययन कर जैनमूर्त्ति-विज्ञान का यहाँ सर्वप्रथम - सचित्र एव प्रामाणिक विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत कर दीर्घकाल से खटकनेवाली एतद्विषयक कमी को पूरा किया है। जैनमूर्तिकला पर इसके पूर्व भी कुछ कार्य हुआ है, किन्तु वह प्राय प्रासगिक ही रहा तथा मूल साहित्य का विधिवत् अध्ययन न होने से वह प्राय आनुमानिक अध्ययन रहा है। प्रस्तुत कृति से जैनविद्या के अध्ययन का विस्तार तो हुआ ही, साथ ही भारतीय पुरातत्त्व के क्षेत्र मे भी इस माध्यम से एक नवीन उपलब्धि हुई है।

श्रमण-साहित्य मे वर्णित बिहार की कुछ जैन तीर्थभूमियाँ · प्रस्तुत कृति के द्वारा **डॉ० राजाराम जैन** (आरा) ने बिहार के कुछ प्रमुख जैनतीर्थों का ऐतिहासिक इतिवृत्त प्रस्तुत किया है। इसमे रामायण, महाभारत, अष्टादश पुराण, विदेशी यात्रियो के यात्रा-वृत्तान्त, पालि-प्राकृत एव सस्कृत-साहित्य, जैन भूगोल एव अन्य पुरातात्त्विक सामग्री के आधार पर कोटिशिला, राजगृह, गुणावा, नालन्दा, पावापुरी, पाटलिपुत्र, सम्मेदशिखर, वैशाली, गोरथगिरि, मिथिला, चम्पा, जृम्भिक-ग्राम, आरा, गया जैसी तीर्थभूमियो का प्रामाणिक परिचय दिया गया है। बिहार के प्राचीन भूगोल पर कार्य करनेवाले शोधार्थियो के लिए यह कृति एक निर्देशिका का कार्य करेगी, ऐसा विश्वास है।

पावा-समीक्षा : इसके लेखक **श्रीकन्हैयालाल सरावगी** (छपरा, बिहार) ने प्राचीन जैनसाहित्य एव अन्य सन्दर्भ-ग्रन्थो का ऐतिहासिक, राजनीति, सास्कृतिक तथा भौगोलिक दृष्टियो से तुलनात्मक अध्ययन कर यह सिद्ध किया है कि भ० महावीर की निर्वाण-भूमि पावा, नालन्दा जिले मे स्थित पावापुरी नही हो सकती, वह देवरिया (उत्तरप्रदेश) का वह स्थल है, जो आजकल सठियाँव (फाजिलनगर) के नाम से प्रसिद्ध है। अपने विचारो के समर्थन मे श्रीसरावगी ने दिगम्बर एव श्वेताम्बर-आगमसाहित्य एवं उत्खनन मे प्राप्त सामग्री प्रस्तुत की है, जिससे यथार्थता के सकेत भी मिलते हैं। पुरातत्त्ववेत्ताओ को श्रीसरावगी की स्थापनाओ के खण्डन अथवा मण्डन मे अपने विचार व्यक्त करना चाहिए।

जैनदर्शन की रूपरेखा · प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक **डॉ० एस० गोपालन्** (मद्रास-विश्वविद्यालय) ने इसमे जैन-परम्परा का विश्लेषण कर इसके विविध अगो पर गवेषणात्मक प्रकाश डाला है। साथ ही, जैनधर्म की उत्पत्ति तथा अन्य धर्मों के साथ इसके सम्बन्धो को लेकर जो भ्रान्तियाँ उत्पन्न हो गई हैं, लेखक ने उनका निरसन कर यह सिद्ध किया है कि भारतीय दर्शनो का सही मूल्याकन करने के लिए जैनदर्शन एव आचार का गम्भीर अध्ययन अत्यावश्यक है, क्योकि वह भारतीय विचारधारा का अविभाज्य अंग है। प्रस्तुत कृति पाँच खण्डो मे विभक्त है, जिनमे महावीर के पूर्व एव पश्चाद्वर्ती जैनधर्म और सघभेद, के वर्णन के बाद ज्ञानमीमांसा, मनोविज्ञान, तत्त्वमीमासा, नीतिशास्त्र आदि विषयो का सुन्दर विवेचन किया गया है। ऐसी निष्पक्ष एव उपयोगी रचना के लिए जैनविद्या-विभाग डॉ० गोपालन् की सराहना करता है। आशा है, वे भविष्य मे भी इस प्रकार की उपयोगी रचनाओ का सर्जन करते रहेगे।

Fandamentals of Jainism बैरिस्टर चम्पतराय जैन-कृत यह ग्रन्थ सर्वप्रथम सन् १९१६ ई० मे Practical Path के नाम से प्रकाशित हुआ था,

किन्तु शीघ्र ही उसके दुर्लभ हो जाने तथा देश-विदेश के जैनविद्यामर्मज्ञो द्वारा वार-वार माँग किये जाने के कारण मुनिश्री विद्यानन्दजी की प्रेरणा से वीरनिर्वाण-भारती, मेरठ ने सन् १९७४ ई० मे इसका उक्त नाम से पुन सशोधित रूप मे प्रकाशन किया है। इसमे दर्शन, सिद्धान्त, आचार, इतिहास, पुरातत्त्व आदि जैनधर्म के विविध पक्षो का वैज्ञानिक एव तुलनात्मक विवेचन किया गया है। अन्त मे, लेखक ने हिन्दुस्तानी-भाषा मे स्वरचित वैराग्य-भावना तथा उसका अंगरेजी-अनुवाद भी प्रस्तुत किया है।

Jainism not an atheism श्रीहर्वर्ट वारन द्वारा लिखित उक्त लघु पुस्तिका सर्वप्रथम सन् १९४० ई० मे आरा (विहार) से प्रकाशित हुई थी, उसी समय से यह कृति वडी लोकप्रिय रही। उसके दुर्लभ रहने के कारण सन् १९७४ ई० मे इसका पुन प्रकाशन वी० नि० भा०, मेरठ से किया गया है। इसके परिशिष्ट मे Six Dravyas of Jain Philosophy नामक एक निवन्ध तथा अन्य सामग्री भी प्रस्तुत की गई है। जैनदर्शन के शोधार्थियो के लिए यह पुस्तक वडी उपयोगी है।

जैनधर्म की उदारता : जैनधर्म कर्म से जाति मानता है, जन्म से नही। उसकी दृष्टि मे उच्चता एव नीचता आचरण-भेद की अपेक्षा से है, धन-समृद्धि, अथवा परम्परा से नही। जैनधर्म के इन्हीं मूलसिद्धान्तो के आधार पर **प० परमेष्ठीदास जैन** (ललितपुर, उ० प्र०) द्वारा यह ग्रन्थ लिखा गया है। इसमे उल्लिखित प्रमाणो के आधार पर जैनधर्म वस्तुत हरिजनोद्धारक, महिलाओ को समानाधिकार दिलाने मे अग्रणी तथा समत्वयोगी रहा है। लेखक के अनुसार, जैनधर्म सच्चे अर्थ मे आदर्श समाजवादी एव साम्यवादी धर्म है।

शाकम्भरी-प्रदेश के सांस्कृतिक विकास मे जैनधर्म का योगदान : **डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल** द्वारा लिखित उक्त लघु ग्रन्थ के चार अध्यायो मे प्राच्यकालीन शाकम्भरी-प्रदेश के अन्तर्गत आधुनिक नागौर, साँभर, अजमेर, नरायणा, मोजमावाद, मारोठ, जोवनेर, रूपनगढ, कालाडेहरा, भादवा, दुदू एव रैनवाल-किशनगढ के प्राचीन वैभव, वहाँ के भट्टारको की प्रमुख प्रवृत्तियो, शास्त्र-भाण्डारो तथा उनमे सुरक्षित कुछ प्रमुख हस्तलिखित ग्रन्थो एव प्रदेश के जैन पुरातत्त्वो का सुन्दर परिचय प्रस्तुत किया गया है। उक्त प्रदेश की महत्त्वपूर्ण सामग्री के एक ही साथ प्रस्तुतीकरण का यह कार्य स्तुत्य है।

जीवन-रहस्य एवं कर्म-रहस्य : **प्रो० अनन्तप्रसाद जैन** ने प्रस्तुत पुस्तक के प्रथम भाग मे मानव-जीवन के विविध रहस्यो एव उसके जीवन मे घटित होनेवाली

घटनाओ का विश्व-प्रकृति से सम्बन्ध तथा इसी माध्यम से जैनदर्शन के सप्ततत्त्वो का आधुनिक विज्ञान के सन्दर्भ मे मार्मिक विवेचन प्रस्तुत किया है। द्वि० भा० मे लेखक ने कर्म-प्रक्रिया के रहस्यो का उद्घाटन किया है। चूँकि लेखक स्वय इजीनियर वैज्ञानिक है, इसलिए जैनदर्शन-सम्मत कर्म का उन्होने रासायनिक विश्लेषण किया है। श्रीजैन का यह वैज्ञानिक विश्लेषण जैनतत्त्व-सिद्धान्त के वैज्ञानिक विश्लेषण के लिए एक प्रशस्त प्रवेश-द्वार का कार्य करेगा, ऐसी आशा है।

ज्ञानसमुच्चयसार : प्रस्तुत रचना तारणपन्थ-सम्प्रदाय के प्रवर्तक **तारण स्वामी** (वि० स० १५०५) द्वारा प्रणीत है। इनके द्वारा विरचित अनेक ग्रन्थो मे अभी तक १३ ग्रन्थो का प्रकाशन हो चुका है। इनकी रचनाओ की भाषा सस्कृतमिश्रित प्राकृत है। यथा

ज्ञानेन ज्ञानसहावं कुज्ञानं तर्जंति सयल मिच्छत्तं।
ज्ञानसमुच्चयशुद्ध ज्ञानसहावेन जंति निव्वान ॥

पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री (वाराणसी) द्वारा सम्पादित उक्त रचना की ९०७ गाथाओ मे सम्यक्त्व, ग्यारह प्रतिमा, द्वादश तप एव चतुर्दश गुणस्थानो का परिचय दिया गया है। मूलपाठ-सशोधन के साथ सम्पादकीय प्रस्तावना से ग्रन्थ का पाठ्य-वैभव अलकृत हो उठा है। प्राकृत एव जैनविद्या के क्षेत्र मे उक्त ग्रन्थ एक नवीन उपलब्धि मानी जायगी।

जैनाचार्य रविषेण-कृत पद्मपुराण और तुलसी-कृत रामचरितमानस : डॉ० रमाकान्त शुक्ल द्वारा लिखित उक्त शोध-प्रबन्ध मे **आचार्य रविषेण** (८वी सदी)-कृत सस्कृत पद्मपुराण एव **गोस्वामी तुलसीदास**-कृत हिन्दी-रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसके दस अध्यायो मे शोधक विद्वान् ने दोनो ग्रन्थो के मूल तथ्यो का सूक्ष्म दृष्टि से तुलनात्मक विश्लेषण किया है। अपने-अपने युगो के दो प्रतिनिधि कवियो का इतना सहजग्राह्य शोधकार्य सम्भवत पूर्व मे नही हो पाया था। रामकथा की जैन एव वैदिक इन दोनो परम्पराओ का गहन अध्ययन एव शोधकार्य प्रस्तुत कर डॉ० शुक्ल ने एतद्विषयक भावी शोधार्थियो के लिए प्रशस्त मार्ग तैयार कर दिया है।

शतकचूर्णि-व्याख्या : मोजमाबाद (जयपुर) के शास्त्र-भाण्डार से उपलब्ध **आचार्य शिवशर्मा** (अनुमानत ५ वी शती)-कृत उक्त ग्रन्थ अद्यावधि अप्रकाशित था। क्षुल्लक सिद्धिसागरजी ने उक्त ग्रन्थ का पाठ-सशोधन-सम्पादन एव हिन्दी-अनुवाद-सहित तैयार कर प्रकाशित किया है। आचार्य शिवशर्मा की लोकप्रियता का

पाठन से कैसे हट गया ! अभी हाल मे प्राकृत-भाषा के मर्मज्ञ एव कुशल सम्पादक **डॉ० एच्० सी० भायाणी** ने इसका मूल संशोधित पाठ के साथ गुजराती-अनुवाद प्रस्तुत कर एक बडी भारी कमी को दूर किया है। क्या ही अच्छा होता कि उसका हिन्दी एव अँगरेजी-अनुवाद भी प्रकाशित होता, तो उसके अध्ययन का क्षेत्र विस्तार पा जाता। यह ग्रन्थ भी ला० द० भारतीय संस्कृति-विद्यामन्दिर, अहमदाबाद से प्रकाश्यमान है।

दक्षिणभारतीय जैनसाहित्य के कुछ अभिनव प्रकाशन

पिछले ३-४ वर्षो मे कन्नड, तमिल, तेलुगु एवं मलयालय मे अनेक स्तरीय जैनग्रन्थो एव शोधपत्र-पत्रिकाओ का प्रकाशन हुआ है। भारतीय साहित्य के इतिहास में इनका मूल्यांकन किया जायगा। कन्नड-साहित्य मे भट्टारक **श्री चारुकीर्ति पी० स्वामीजी** ने कन्नड-जैनसाहित्य के सन्दर्भ मे **आचार्य जिनसेन**-कृत जैनमहापुराण का एक अध्ययन प्रस्तुत कर महापुराण-साहित्य के समीक्षात्मक अध्ययन को एक नवीन दिशा प्रदान की है। उक्त ग्रन्थ के अतिरिक्त स्वामीजी 'भारत के दिगम्बर जैनतीर्थ' का पाँचवाँ खण्ड (भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली से प्रकाश्य) तैयार करने मे व्यस्त हैं, जिसमे दक्षिण भारत के दि० जैनतीर्थो का प्रामाणिक इतिहास प्रस्तुत करेंगे। अन्य उल्लेखनीय साहित्य इस प्रकार हैं :

कन्नड नेमिनाथ पुराणगल तौलनिक अध्ययन (कन्नड) मे उसके लेखक **डॉ० टी० वी० वेंकटाचल शास्त्री** ने दिग० एव श्वे० साहित्य मे प्रचलित तथा कन्नड-साहित्य मे उपलब्ध नेमिकथा का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन किया है। इस सन्दर्भ में, लेखक ने जिनसेन-कृत हरिवंशपुराण, गुणभद्र-कृत उत्तरपुराण हेमचन्द्र-कृत त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, चावुण्डराय-कृत चावुण्डराय-पुराण (कन्नड), कर्णपार्य-कृत नेमिनाथपुराण (कन्नड), नेमिचन्द्र-कृत नेमिनाथपुराण (कन्नड) जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थो के विभिन्न पक्षो का ९ अध्यायो मे सुन्दर विवेचन किया है।

विजयण्ण-विरचित द्वादशानुप्रेक्षे (कन्नड)

महाकवि **विजयण्ण**-कृत उक्त ग्रन्थ जैन अध्यात्म की अपूर्व कृति मानी जाती है। सन् १४४८ ई० मे लिखित यह काव्य १२ अध्यायो एव उनके कुल १३६२ सांगत्य-पद्यो मे है। इसमे द्वादशानुप्रेक्षाओं का सोदाहरण वर्णन है। केवल तत्त्व-निरूपण से वह कृति नीरस न हो जाय, इसीलिए कवि ने दृष्टान्त-कथोपकथन-शैली का भी प्रयोग किया है। इससे कवि की धर्म-श्रद्धा एव काव्यरचना-सामर्थ्य

दोनों पर प्रकाश पडता है। श्री के० आर० शेषगिरि ने बेंगलूर, मूडबिद्री आदि के ग्रन्थागारो मे उपलब्ध प्राचीन ताडपत्रीय प्रतियो के आधार पर पाठ-शोधन कर प्रस्तुत कृति का सम्पादन किया है।

बाहुबलि पण्डित-विरचित धर्मनाथपुराण (कन्नड) : प्रस्तुत ग्रन्थ सन् १३५२ ई० के बाहुबलि पण्डित द्वारा विरचित है। इनकी अन्य रचनाओ मे गुम्मटनाथचरित (संस्कृत) भी उपलब्ध है। संस्कृत एव कन्नड मे समानाधिकार होने के कारण उन्हे उभयभाषाचक्रवर्ती का विरुद प्राप्त था। उक्त 'धर्मनाथ-पुराण' १६ आश्वासो का एक सुन्दर चम्पूकाव्य है, जिसका मूल आधार गुणभद्र-कृत उत्तरपुराण एव चावुण्डराय-कृत चावुण्डपुराण है। इसमे प्राचीन कवियो की परम्परा का अनुसरण दृष्टिगोचर होता है। श्री एन्० बसवाराध्य ने दो ताडपत्र एव एक कर्गल की हस्तप्रति तथा एक असमग्र मुद्रित प्रति के आधार पर इस ग्रन्थ का सम्पादन किया है।

उद्योगसार (कन्नड) : प्रस्तुत ग्रन्थ मे सागार एव अनगार धर्म का विवेचन है। इसके कुल ४२६ पद्यो मे ३० वृत्त छन्द एव शेष कन्द छन्द है। यत्र-तत्र गद्य का भी प्रयोग है। इसके प्रणेता कवि बालचन्द्र का समय १३वी शती के लगभग माना गया है। इसका सम्पादन श्री एन्० बसवाराध्य ने उपलब्ध ३ ताडपत्र एव एक कर्गल हस्तप्रति के आधार पर पूर्ण करके जैनविद्या की महती सेवा की है।

वर्द्धमानपुराण (कन्नड) के प्रणेता नागवर्मा द्वितीय (सन् १०४२ ई०) ने प्रस्तुत रचना के १६ आश्वासो मे भ० महावीर का चरित अकित किया है। कन्नड-भाषा मे एतद्विषयक उपलब्ध स्वतन्त्र रचनाओ मे यह रचना सर्वप्रथम मानी गई है। प्रो० वी० एस० सण्णय्या ने मूडबिद्री के प्राच्य ज्ञान-भाण्डार मे सुरक्षित मात्र एक ताडपत्रीय प्रति के आधार पर इसका सर्वप्रथम सम्पादन किया है। सम्पादक की साहित्यिक निष्ठा एव अथक परिश्रम की प्रतीक यह कृति कन्नड-भाषा एव जैनविद्या के क्षेत्र मे समुचित प्रतिष्ठा प्राप्त करेगी, ऐसा विश्वास है।

उक्त पाँचो कन्नड-ग्रन्थ मैसूर-विश्वविद्यालय के कन्नड-भाषा-विभाग द्वारा प्रकाशित हैं।

मल्लिनाथपुराण (कन्नड) : नागचन्द्र कवि (सन् ११४० ई० के लगभग)-कृत १४ आश्वासोवाले उक्त ग्रन्थ मे १९वें तीर्थंकर मल्लिनाथ का चम्पूकाव्य-शैली मे जीवन-चरित वर्णित है। मल्लिनाथ के जीवन-चरित पर बहुत कम साहित्य लिखा गया और जो कुछ भी उपलब्ध है, उसमे उक्त कृति विस्तृत, सर्वांगीण एव सरस तथा

सर्वोपरि है। डॉ० आर्० सी० हिरेमठ तथा डॉ० वी० वी० हेण्डि अत्यन्त वधाई के पात्र हैं, जिन्होंने अथक और अनवरत परिश्रम कर अधुनातन शैली मे इस कृति का सम्पादन किया है। यह ग्रन्थ कर्नाटक-विश्वविद्यालय, धारवाड के कन्नड-भाषा-विभाग द्वारा प्रकाशित है।

रन्न (कन्नड) : प्रस्तुत पुस्तक मे सन् ९४९ ई० के कविचक्रवर्ती उभयभाषा-विशारद महाकवि रन्न के कृतित्व एव व्यक्तित्व पर समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसके छह अध्यायो मे कवि-कालनिर्णय, काव्य-वैशिष्ट्य, कविकृत 'गदायुद्ध', 'अजितपुराण' नामक काव्यो का परिचय तथा उनका काव्य-मूल्याकन, कवि-वाणी-सग्रह, चालुक्यवशी राजाओ का साहित्यिक जगत् मे योगदान जैसे महत्वपूर्ण विपयो पर प्रकाश डालकर इसके लेखक-मण्डल श्री डी० वी० शेषगिरि राव, एम्० जी० वेंकटेशय्या, डॉ० एम्० मरियप्प भट्ट ने रन्न-प्रेमियो का महदुपकार किया है।

जन्न (कन्नड) . प्रस्तुत ग्रन्थ मे १२वीं शती के सुप्रसिद्ध कन्नड-कवि जन्न का प्रामाणिक जीवन-वृत्त प्रस्तुत किया गया है। कवि की लोकप्रियता का यही सबसे बडा प्रमाण है कि इनकी उत्कृष्ट रचना 'यशोधरचरित' राजभवनो से झोपडो तक पूज्य मानी जाती रही, शिक्षित-अशिक्षित सभी के कण्ठो मे वह समाहित रही। इस प्रकार, ख्यातिप्राप्त लोककवि जन्न-सम्वन्धी उक्त कृति ने दीर्घकाल से अनुभव की जानेवाली कमी को पुरा किया है। इस महान् कार्य के लिए उसके लेखक श्री सी० पी० कृष्णकुमार, वी० एच्० श्रीधर और एम्० ए० सिगम्मा वधाई के पात्र हैं।

एरडनेय नागवर्मा (कन्नड) : इस रचना में कन्नड-कवि नागवर्मा (द्वितीय) का प्रामाणिक जीवन-वृत्त एव उसकी कर्नाटक-कवि भूपण, अभिधानवस्तु-कोप एव वर्द्धमानपुराण नामक कृतियो का काव्य-मूल्याकन प्रस्तुत किया गया है। इसके लेखक हैं श्री एच्० एम्० शकर नारायण राव, एम्० राजगोपालाचार्य एवं एन्० रगनाथ शर्मा तथा सम्पादक हैं श्री वी० सीतारामय्या।

पम्प-युग के जैनकवि मे उसके लेखक प० के० भुजवली शास्त्री ने कन्नड के महाकवि पम्प (सन् ९४१ ई०), पोन्न (लगभग सन् ९५० ई०) रन्न (सन् ९९३ ई०), चावुण्डराय (सन् ९७८ ई०), श्रीधराचार्य (सन् १०४९ ई०), दिवाकरनन्दी (लगभग सन् १०६२ ई०), शान्तिनाथ (लगभग सन् १०६८ ई०), नागचन्द्र (लगभग सन् ११०० ई०), कन्ति (लगभग सन् ११०० ई०), नयसेन (सन् १११२ ई०), राजादित्य (लगभग सन् ११२० ई०), कीर्त्तिवर्मा (लगभग सन् ११२५ ई०), ब्रह्मशिव (लगभग सन् ११२५ ई०), कर्णपार्य (लगभग सन् ११४० ई०), नागवर्मा द्वितीय,

(लगभग सन् ११४५ ई०), सोमनाथ (लगभग सन् ११५० ई०), वृत्तविलास सन् ११६० ई०), नेमिचन्द्र (लगभग सन् ११७० ई०), बोप्पण (लगभग सन् ११८० ई०), अग्गल (लगभग सन् ११८९ ई०), आचण्ण (लगभग सन् ११९५ ई०), बन्धुवर्मा (सन् १२०० ई०), पार्श्व (सन् १२०५ ई०), जन्न (सन् १२३० ई०), गुणवर्मा द्वितीय (लगभग सन् १२३५ ई०), कमलभव (लगभग सन् १२३५ ई०) एव महाबल (सन् १२५४ ई०) के कृतित्व एव व्यक्तित्व का परिचय प्रस्तुत कर कन्नड-साहित्य के जिज्ञासुओ पर बडी कृपा की है। विश्वास है कि विचक्षण लेखक की समर्थ लेखनी से आगे भी इस प्रकार की अनेक रचनाएँ प्रसूत होगी।

उक्त ग्रन्थो के अतिरिक्त मैसूर-विश्वविद्यालय ने भी कन्नड-भाषा एव जैन-कवियो-सम्बन्धी लगभग २० ग्रन्थो का प्रकाशन किया है। इनमे से कुछ तो लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएँ हैं और कुछ शोधग्रन्थ। ये रचनाएँ निस्सन्देह ही कन्नड-साहित्य की अमूल्य मणियाँ हैं।

थिरुक्कुरल (तमिल) . **श्रीजीवबन्धु टी० एस्० श्रीपाल** ने प्रस्तुत लघु पुस्तिका मे तमिल-साहित्य के पचम वेद के रूप मे सुप्रसिद्ध लोकप्रिय ग्रन्थ 'थिरुक्कुरल' का आलोचनात्मक अध्ययन करते हुए उसके प्रणेता तिरुवल्लुवर का प्रामाणिक जीवन वृत्त एव ग्रन्थ के वर्ण्य विषय का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है।

ईम्मन-कोइल (तमिल) : श्री टी० एस० श्रीपाल ने विविध प्रमाणो एव तर्कों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि 'थिरुक्कुरल' के कर्त्ता तिरुवल्लुवर तमिल-भाषा के जैनकवि थे।

इधर कुछ विद्वानो ने जैनसाहित्य मे उपलब्ध वैज्ञानिक सामग्री का आधुनिक विज्ञान के सन्दर्भ मे जीव, अजीव, वनस्पति, अणु, काल, आकाश, गणित, भूगोल एव खगोल-विद्या को प्रथम स्थान दिया है। वस्तुत, इस प्रकार के शोध-कार्यों के लिए अनुसन्धित्सुओ को जहाँ एक ओर प्राच्यभारतीय भाषाओ का ज्ञान आवश्यक है, वही दूसरी ओर उन्हे अधुनातन विज्ञान के सिद्धान्तो का ज्ञान भी आवश्यक है। एकागी ज्ञान तथा प्रयोग के अभाव मे शोधकार्यों मे मिश्रित परिणामो अथवा परिपूर्णताओ की कम ही सम्भावना है। फिर भी, जो कुछ शोधकार्य हो रहा है, वह पर्याप्त उत्साहवर्द्धक है। अभी तक इस दिशा मे जो भी कार्य हुए हैं, उनमे कुछ इस प्रकार हैं

Dr J C Sikdar (L D Institute of Indology, Ahmedabad)

1 Jaina Concept of Space (1975-76)
2 Biologic Interrelation according to the Jaina literature (1975)

3 Cellular Metabolism as revealed in Jaina Biology.
4 Bacteria, Algae and Fungi as found in Jaina Literature (1975)
5 Jaina concept of matter (1975-76)
6 Green properties of Plant Life according to Jaina Biology (1975-76)
7 Evolution of Plant Kingdom according to the Jaina literature (1975-76)

Dr M R Gelra (Bikaner)

१ जैनविज्ञान मे पुद्गल की परिभाषा ।
2 The Relationship of space-Pudgala (matter)—Lime discussed in Jaina Agama (1976)

Sri S S Lishk (Punjabi University, Patiala)

1 Similarities between Jaina Astronomy and Vedanga Jyotisa
2. Jaina School of Astronomy (1976)

Prof L C. Jain (P.G Dept of Mathematics, Govt College, Khandwa, M P)

1 Set theory in Jaina School of Mathematics (1973)
2 Roll of Mathematics in Jainology (1975)
3 Kinematics of the sun and the Moon in Tiloya Pannatti (1975)
4 Jaina School of Mathematics (1975)
5 Contributions of Todaramala to Jaina School of Mathematics
6 Principles of Relativity in Jaina School of Mathematics

Dr Nand Lal Jain (Home Science College, Jabalpur)

१ जैनदर्शन मे भौतिकी के तत्त्व (प्रकाश, विद्युत् और चुम्बकत्व) ।

Sri P C Pandya (Bhilawara, Rajasthan)

१ आर्यभट्ट और उनपर जैनज्योतिष का प्रभाव (बी० एन्० बी०, जयपुर) ।

पिछले दो दशको के शोधकार्यों को देखने से ऐसा विदित होता है कि प्राकृत, अपभ्रश एव जैनविद्या ने अनुसन्धित्सुओ को अपनी ओर अधिक आकृष्ट किया है। इन शोध-विषयो मे अप्रकाशित हस्तप्रतियो का सम्पादन, मूल्याकन, काव्यग्रन्थो का काव्यशास्त्रीय एवं सास्कृतिक अध्ययन, तथा जैनधर्म-दर्शन, इतिहास, कला, सस्कृति,

भाषा आदि पक्ष प्रमुख हैं। पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला का भौतिकशास्त्र-विभाग इस समय Jaina Astronomy पर विशिष्ट कार्य कर रहा है। इस विषय पर वहां अभी जो शोध-निष्कर्ष निकले हैं, उनके अनुसार, "जैनग्रन्थों में ज्योतिष के मूल वर्तमान हैं, किन्तु वेदांग-ज्योतिष के बाद सूर्य-सिद्धान्त से पूर्व जैनग्रन्थों में ज्योतिष के अन्धकार-युग का पता चलता है। किन्तु, अब यह अन्धकारमय युग न रहेगा।" (व्यक्तिगत एक पत्र से उद्धृत)। हमें विश्वास है कि पंजाबी विश्वविद्यालय उक्त महत्त्वपूर्ण शोधकार्य को उत्तरोत्तर गति प्रदान करता रहेगा।

अन्य उपलब्ध सूचनाओं के अनुसार, जटासिंह नन्दी-कृत वरांगचरित, (कमल-कुमारी, मगध-वि०वि०) आचार्य समन्तभद्र (नेमिचन्द्र जैन, मगध-वि० वि०), अभमानमेरु पुष्पदन्त (रामकृष्ण तिवारी, मगध-वि० वि०), Economic condition in Ancient India asdepicted in Jain Canonical literature (D. C Jain, M U), Jaina Temples of Western India (Harihar Singh, B H U), Jaina Iconography in N India (M N. Tiwari, B.H U), मूलाचार का समीक्षात्मक अध्ययन (फूलचन्द्र जैन, B H U), जैनाचार्यों का अलंकार-शास्त्र में योगदान (कमलेश जैन, B H U), त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित में वर्णित महावीरचरित का तुलनात्मक अध्ययन (कु० मंजुला मेहता, B H.U), आचार्य हरिभद्र के योगग्रन्थों का आलोचनात्मक अध्ययन (जयप्रकाशनारायण, मगध-वि०वि०), रायपसेणीय सुत्त एक परिशीलन (विजयकुमार सिन्हा, मगध-वि० वि०), जैन तर्कशास्त्र में बौद्ध प्रत्यक्ष प्रामाण्यवाद (लालचन्द जैन, B.H U), विशेषावश्यक भाष्य का दार्शनिक अध्ययन (हुकुमचन्द्र संगवे, B H U), मध्यकालीन हिन्दी-जैनकाव्य में रहस्य-भावना (श्रीमती पुष्पलता जैन, नागपुर-वि० वि०), A critical and comparative study of Kundakunda (S M Shah, Poona University) आदि विषयों पर शोधकार्य हो रहे हैं।

भ० महावीर के २५००वें निर्वाण-समारोह के उपलक्ष्य में जिस प्रकार अनेक उच्चस्तरीय ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ, उसी प्रकार अनेक स्मारिकाएँ, शोध-विशेषांक एवं नवीन पत्र-पत्रिकाएँ भी प्रकाशित की गईं। इस माध्यम से भी जैनविद्या के कई नवीन पक्षों पर अच्छा प्रकाश पड़ा है। ऐसी स्मारिकाओं एवं शोध-विशेषांकों में—राजस्थान का जैन साहित्य (राजस्थान-सरकार द्वारा प्रकाशित, सन् १९७५ ई०), तीर्थंकर (मासिक, अँगरेजी एवं हिन्दी, इन्दौर), तुलसी-प्रज्ञा (लाडनूँ), महावीर-जयन्ती-स्मारिका (जयपुर), वीर-निर्वाण-स्मारिका (जयपुर); स्मारिका (हरियाणा); महावीर-जयन्ती-स्मारिका (कलकत्ता), वीरवाणी (जयपुर), जैनसन्देश-शोधांक (मथुरा), अनेकान्त (दिल्ली), उर्दू-मिलाप (जालन्धर), उर्दू-प्रताप (जालन्धर), अमर भारती (आगरा), J R S Journal (Varanasi) आदि प्रमुख हैं। नवीन शोध-पत्रिकाओं में

वीर-परिनिर्वाण, मासिक (दिल्ली) एव सम्बोधि (अहमदाबाद) के नाम विशेष रूप मे उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने अनेकविध विचारोत्तेजक नवीन शोध-सामग्री एव महत्वपूर्ण सन्दर्भ-सूचनाएँ प्रकाशित की हैं।

उक्त स्मारिकाओ एव शोधपत्र-पत्रिकाओ मे यथानिर्दिष्ट निबन्ध विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं: मन्त्रीश्वर चाणक्य का जैनत्व (डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन, जैनसन्देश-शोधाक-३३), On the Etymology of 'Puggala or Poggala' (by Prof S M Shah, सम्बोधि 1975-76), An old version of the Jaina Ramayana (Dr J C Jain, सम्बोधि 1975-76), अपभ्रंश का एक अद्यावधि अप्रकाशित दुर्लभ ग्रन्थ तिसट्ठिसलाकामहापुराण पुरिसगुणालकार, डॉ० राजाराम जैन, जैनसिद्धान्तभास्कर, २७।१), पदम कवि-रचित अप्रकाशित रचना - महावीररास (डॉ० राजाराम जैन, Journal of Rajasthan Instt of Hist research, Jaipur, 1214) गजसिंह गुणमालचरित (डॉ० गदाधरसिंह, जैं० सि० भा०, जुलाई, ७५), राजस्थान के जैनेतर विद्वान् रचित महावीरचरित (श्रीअगरचन्द नाहटा, वीरवाणी, जयपुर, जन० १९७५ ई०), जैनकर्म-सिद्धान्त और भारतीय दर्शन (उदयचन्द्र जैन वाराणसी, जै० सि० भा०, जुलाई ७५), महावीर की निर्वाण-तिथि (डॉ० कैलासचन्द्र जैन, उज्जैन, तुलसी-प्रज्ञा, अक्टू०-दिस०, १९७५ ई०), Social significance of Jaina Ethics (Dr R C Dwivedi, तुलसी-प्रज्ञा, अक्टू०-दिस०, १९७५ ई०), जैनदर्शन की व्यापकता (डॉ० गोकुलचन्द्र जैन, वाराणसी, वी० नि० स्मा०, जयपुर, सन् १९७५ ई०), तीर्थंकरत्व-प्राप्ति के निमित्तो का तुलनात्मक अध्ययन (डॉ० भागचन्द्र जैन, नागपुर, वी० नि० स्मा०, जयपुर, ७५ ई०), राजस्थानी-भाषा मे प्राकृत-अपभ्रंश के प्रयोग (डॉ० प्रेम सुमन जैन: तुलसी-प्रज्ञा, जन०-मार्च, १९७५ ई०), जैनन्याय-परिशीलन (डॉ० दरबारीलाल कोठिया, अनेकान्त, दिल्ली, २८।१), राजुलनेमि-भक्तिगाथा (डॉ० जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल, जैं०सि०भा०, दिस० ७५) Jaina Sculpture from Bangladesha (P C Dasgupta, Jaina Journal, Cal 10/4), Basic contributions of Jainism (Dr N Tatia, News Chronicle, Ludhiana, 5-11-75) Vyavahara-Naya (S M Shah, B O R I Vol LVI, pp 105-128), पाइयसद्दमहण्णवो मे अनुपलब्ध शृंगारमंजरी सट्टक की शब्दावली (डॉ० के० आर० चन्द्र, सम्बोधि, सन् १९७४ ई०), Jaina Art and Antiquities in Mithila (Dr Upendra Thaknr, M U, 1975), Jainism in Mithila and its compact on Mithila-culture (Dr Upendra Thakur, M U.), Is Vasudevahindi a Jain Version of the Brhatkatha? by Dr J C Jain (Journal of the O I Baroda, Sep-Dec 1973), Vidyadharas and the Vasudevahindi by Dr J C Jain,

Journal of the O I Baroda, Sept-Dec 1974), The Importance of Vasudevahindi by Dr J C Jain (Wienor Zeitschrift fur die Kunde Sudasiens (WZKSA), Viena, Jan, 1975) Stories of Trading Merchants and Vasudevahindi by Dr J C Jain (Annals of the B O R I, Poona, Vol LV, 1974-75), Some Important Episodes in the Vasudevahindi and the Reconstruction of the Brhatkatha by Dr J C Jain (Sambodhi, Vol. III, No 4, 1975, Ahmedabad), The Missing Lambhas in the Vasudevahindi and the Story of Prabhavati by Dr J C Jain (Indo-Iranian Journal, Leiden, 1975)

अभिनन्दन, स्मृति-ग्रन्थ, स्मारिकाएँ, शोध-विशेषांक आदि

आचार्य श्रीआनन्द ऋषि अभिनन्दन-ग्रन्थ : प्रस्तुत ग्रन्थ प्राकृत एव जैनविद्या-विषयक शोध-निबन्धो एव विचारोत्तेजक सूचनाओ के कारण सर्वोपयोगी ज्ञानकोष माना जा सकता है। ७४५ पृष्ठो का यह ग्रन्थ ६ खण्डो मे विभक्त है। प्रथम एव द्वितीय खण्ड आचार्य आनन्द ऋषि के कृतित्व एव व्यक्तित्व से सम्बन्ध रखते है। शेष खण्डो मे निबन्धो का सग्रह है। इनमे निश्चय और व्यवहार (डॉ० सागरमल जैन, भोपाल), शून्यवाद और स्याद्वाद (प्रो० दलसुख भाई मालवणिया), स्याद्वाद-सिद्धान्त (देवकुमार जैन) जैन रहस्यवाद बनाम अध्यात्मवाद (डॉ० पुष्पलता जैन), जैनदर्शन का कबीरसाहित्य पर प्रभाव (विद्यावती जैन, आरा), पचास्तिकरण में पुद्गल (डॉ० सगवे), चिकित्साशास्त्र और मनोविज्ञान के परिप्रेक्ष्य मे कर्म-सिद्धान्त : भाग्य-निर्माण की कला (क० ल० लोढा), जैन-साहित्य मे क्षेत्र-गणित (डॉ० मुकुटविहारीलाल अग्रवाल), प्राकृत-भाषा (मुनि नगराजजी), पाइअ भासा (श्रीचन्दनमुनि), अपभ्रंश मे वाक्य-सरचना के साँचे (डॉ० के० के० शर्मा), राजस्थानी-भाषा मे प्राकृत-अपभ्रंश के प्रयोग (डॉ० प्रेम सुमन जैन), विक्रमोर्वशीय नाटक के चतुर्थ अक मे ग्रथित प्राकृत-अपभ्रंश-पद्यो का काव्य-मूल्याकन (डॉ० राजाराम जैन), श्रीकृष्ण का वासुदेवत्व जैनदृष्टि (महावीर कोटिया), पुरातत्व-मीमासा (मुनिश्री जिनविजयजी), जैनसस्कृति मे सगीत का स्थान (निरुपमा देवी खण्डेलवाल) Vardhamana and Bhadrabahu (अजयमिश्र शास्त्री) आदि निबन्ध बड़े ही प्रेरक, सूचक, पठनीय एव सग्रहणीय है।

अगरचन्द नाहटा-अभिनन्दन-ग्रन्थ : बीकानेर से प्रकाशित यह ग्रन्थ दो खण्डो मे विभक्त है, जिनमे अभी प्रथम खण्ड ही प्रकाशित हुआ है। इसमे प्राकृत एव जैनविद्या-सम्बन्धी अमित शोध-सामग्री के भाण्डार तथा उसके प्रकाशन को तीव्रगति प्रदान करने के लिए निरन्तर जागरूक महामनीषी सिद्धान्ताचार्य अगरचन्दजी नाहटा के

व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है। नाहटाजी के अभिनन्दन-प्रसंग में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी, गुजराती एवं हिन्दी के अनेक हस्तलिखित अप्रकाशित ग्रन्थों की जानकारी तथा चित्रकला, इतिहास एवं संस्कृति के तथ्यपूर्ण रहस्य उभर-कर सम्मुख आये हैं। ये तथ्य निश्चय ही इतिहास-निर्माण में सहायक सिद्ध होंगे। इस ग्रन्थ को पढ़कर यही अनुभव होता है कि यह सम्मान नाहटाजी का नहीं, बल्कि स्वयं सरस्वती का सम्मान है। इसमें प्रो० श्रीचन्द्र जैन (उज्जैन), शास्त्री शिवशंकर मिश्र तथा शिखरचन्द्र कोचर के निबन्ध तथा राजस्थान-साहित्य-अकादमी (संगम), उदयपुर का सम्मान-पत्र विशेष रूप से पठनीय हैं।

पं० चैनसुखदास-स्मृति-ग्रन्थ : प्रस्तुत ग्रन्थ जैनविद्या का एक सुन्दर सन्दर्भ-ग्रन्थ है। यह चार खण्डों में विभक्त है। प्रथम श्रद्धांजलि-खण्ड में जैनदर्शन के महारथी विद्वान् प० चैनसुखदासजी (जयपुर) के प्रति भावभीनी श्रद्धांजलियाँ अर्पित हैं और उसके बाद धर्म एवं दर्शन, साहित्य एवं संस्कृति तथा इतिहास एवं पुरातत्त्व नामक खण्डों में अनेक अधिकारी विद्वानों के विचारपूर्ण निबन्ध संगृहीत हैं, जिनमें 'जैनदर्शन में सर्वज्ञ-सिद्धि' (डॉ० रामजी सिंह), महाकवि रइधू-कृत एक नवीन उपलब्ध अप्रकाशित अपभ्रंश सचित्र-रचना सतिणाहचरिउ (डॉ० राजाराम जैन), प्राकृत-साहित्य और लोक-संस्कृति (डॉ० प्रेम सुमन जैन), जैनकाल में भारतीय देव-प्रतीकों का रूपान्तर (श्रीगोपीलाल अमर), Place of Jaina Acaryas and poets in History of Kannada literature (Dr A N Upadhye), Analytical Treatment of Transfinite Numbers in Dhavala (L C. Jain) नामक निबन्ध नव्य मूल्यांकन अभिनव संसूचन एवं मौलिक शोधक्षेत्र में नवीन उपलब्धियाँ मानी जा सकती हैं।

भगवान् महावीर-स्मृतिग्रन्थ उत्तरप्रदेश-शासन के सहयोग से, लखनऊ से प्रकाशित ४७५ पृष्ठों का यह ग्रन्थ ७ खण्डों में विभक्त है। प्रथम दो खण्डों में महावीरवचनामृत तथा ऐतिहासिक क्रमानुसार प्राचीन काल से अर्वाचीन काल तक के प्राकृत, अपभ्रंश एवं संस्कृत-भाषा में निबद्ध भगवान् महावीर के स्तवनों का संकलन किया गया है। इसके बाद महावीर-युग में समाज और धर्म की स्थिति (डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन), मानव-उत्कर्ष की ऊर्जा के संवाहक महावीर (लक्ष्मीचन्द्र जैन), महावीर-निर्वाणकाल (डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन), भारतीय वास्तु-कला के विकास में जैनधर्म का योगदान (डॉ० कृष्णदत्त वाजपेयी), उत्तरप्रदेश में जैनधर्म का उदय और विकास (डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन), उत्तरप्रदेश के उत्कीर्ण जैन लेख और उनका महत्त्व (शैलेन्द्रकुमार रस्तोगी), मथुरा-संग्रहालय की कुषाणकालीन जैनमूर्तियाँ (रमेशचन्द्र शर्मा) आदि शोध-सामग्री नवीन एवं विचारणीय हैं। यह

ग्रन्थ उत्तरप्रदेश के जैनविद्या-सम्बन्धी विविध पक्षो की जानकारी हेतु प्रामाणिक सन्दर्भ-ग्रन्थ है ।

क्षुल्लक चिदानन्द-स्मृतिग्रन्थ क्षुल्लक चिदानन्दजी बुन्देलखण्ड के, जैन-विद्या के प्रचारक एव नि स्पृह साधक सन्त थे, जिनकी स्मृति मे उक्त ग्रन्थ का प्रकाशन हुआ है । इसमे अन्य सामग्री के साथ ऋषभ-विष्णु-अग्नि (डॉ० नरेन्द्र विद्यार्थी), चन्देरी-सिरोज (परवार)-पट्ट (प० फूलचन्द्र शास्त्री, वाराणसी), राजा बेन और जैनपरम्परा की प्राचीनता (डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन), भगवान् महावीर और उनके दर्शन का हिन्दी-साहित्य पर प्रभाव (डॉ० ल० ना० दुबे) आदि शोध-निबन्ध नवीन सन्दर्भ-सामग्री प्रस्तुत करते हैं । इस ग्रन्थ मे एक त्रुटि यह खटकती है कि इतिहास-सम्बन्धी लेखो मे मूल उद्धरण प्रस्तुत नही किये गये । यदि उसपर ध्यान दिया जाता, तो निबन्धो की प्रामाणिकता एव उपयोगिता और भी अधिक बढ जाती ।

वर्णी-स्मृतिग्रन्थ . प्रस्तुत स्मृतिग्रन्थ जैनदर्शन एव आचार के मूर्तिमान् विद्वान् प० गणेशप्रसादजी वर्णी की स्मृति मे प्रकाशित किया गया है । ग्रन्थ की सामग्री पठनीय एव सग्रहणीय है । इसका प्रकाशन अ० भा० विद्वत्परिषद्, सागर से हुआ है ।

भ० महावीर स्मृतिग्रन्थ सन्मति ज्ञान-प्रसारक मण्डल, शोलापुर की ओर से यह ग्रन्थ भ० महावीर के २५००वें निर्वाण-समारोह के उपलक्ष्य मे प्रकाशित किया गया है । इसके प्रथम भाग मे डॉ० भागचन्द्र जैन एव प्रो० सुमेरमल के० जैन का निबन्ध 'भ० महावीर एक अग्निरेखा' हृदय की गहराई को छूनेवाला है । अन्य शोध-निबन्धो मे 'जैनकला एक अध्ययन' (स्व० डॉ० हीरालाल जैन), 'प्राचीन जैन-साहित्य मे वर्णित पाटलिपुत्र' (डॉ० राजाराम जैन, आरा) 'सौन्दर्यभूमि वैशाली और भ० महावीर' (आचार्य श्रीरजन सूरिदेव, पटना), कन्नड मे जैनसाहित्य (पं० के० भुजबली शास्त्री) एव जैन सस्कृति की प्राचीनता (डॉ० मंगलदेव शास्त्री) शोधार्थियो के लिए विशेष रूप से उपयोगी हैं ।

जैन सेमिनारें

पिछले ३-४ वर्षों मे जैन सेमिनारो के भी अनेक आयोजन किये गये । U G C ने इस प्रकार के आयोजनो मे बडी अभिरुचि प्रदर्शित की । उसके आर्थिक सहयोग से अनेक विश्वविद्यालयो ने जैनविद्या के विविध पक्षो पर सेमिनारो के आयोजन किये । उज्जैन, पटियाला, उदयपुर, कर्नाटक, भोपाल, इन्दौर, ग्वालियर, मैसूर, विश्वभारती आदि के नाम इस दिशा मे उल्लेखनीय हैं । गया-जैनसमाज के

औदार्यपूर्ण सहयोग से मगध-विश्वविद्यालय, बोधगया ने भी अप्रैल, १९७५ ई० में जैन सेमिनार का विशेष आयोजन किया, जिसमे डॉ० डी० एस० कोठारी, (दिल्ली) डॉ० ए० एन० उपाध्ये (मैसूर), डॉ० सत्यप्रकाश (हैदराबाद), डॉ० जगदीशचन्द्र जैन (बम्बई), भदन्त आनन्द कौशल्यायन (नागपुर) प्रभृति अखिलभारतीय स्तर के अनेक महारथी विद्वानो ने उपस्थित होकर मगध की प्राचीन सस्कृति पर मौलिक शोध-निबन्ध प्रस्तुत किये। इसके शोध-निबन्धों की स्मारिका शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रही है।

कुछ विचारणीय प्रश्न

१ विगत नवम्बर, १९७५ ई० मे विक्टोरिया एव एडवर्ड म्यूजियम, लन्दन के प्राच्यविद्या-विभागाध्यक्ष प्रो० जॉन इर्विन ने अपनी भाषणमाला के क्रम मे यह कहा है कि भारत मे उपलब्ध प्राचीन स्तम्भो मे केवल दो स्तम्भ ही अशोक द्वारा निर्मित हैं, क्योकि उनके अभिलेखो मे अशोक द्वारा उनके निर्मित कराये जाने के स्पष्ट उल्लेख हैं। उक्त दोनो स्तम्भो की विशेषता यह है कि उनपर सिहमूर्त्ति उत्कीर्ण नहीं है। बौद्ध परम्परा मे सिह का महत्त्व भी नही है। ये दोनो स्तम्भ रुम्मनदेई तथा निग्लीव (भारत-नेपाल-सीमा पर) नामक स्थानो मे स्थित है। प्रो० इर्विन ने कुछ प्रमाणो के आधार पर यह विश्वास प्रकट किया है कि उक्त दो स्तम्भो को छोडकर अवशेष उपलब्ध स्तम्भ, जिनपर कि सिह-मूर्त्तियाँ उत्कीर्ण हैं, अशोक के पूर्व के हैं और अशोक ने अपनी आज्ञाएँ उन्ही (पूर्वनिर्मित स्तम्भो) पर अकित कराई थी। सप्तम स्तम्भ-लेख इय धमलिवि अत अथि सिला थभानि वा सिला फलकानि वा तत कटविया एन एस चिलठितिके सिया तथा सासाराम (बिहार) का लघु शिलालेख वा अथि हेता सिलाथंभा तत पि लिखापयथ ति यही सूचना देते हैं। यह ध्यातव्य है कि अशोक ने अपने अभिलेखो मे 'धमलिवि लिखापापिता' का ही उल्लेख किया है। रुम्मनदेई एव निग्लीव के उक्त स्तम्भो को छोडकर उसने (अशोक ने) अन्यत्र अपने द्वारा स्तम्भ-निर्माण कराये जाने की चर्चा भी नही की है।

यह तो सर्वविदित ही है कि जैन मान्यतानुसार, जिस प्रकार आद्य तीर्थंकर ऋषभदेव का चिह्न वृषभ एव पार्श्वनाथ का चिह्न सर्प है, उसी प्रकार महावीर का भी चिह्न सिह है। कैवल्य-प्राप्ति के बाद तीर्थंकर के उपदेशो के लिए जब समवशरण अथवा 'सभामण्डप' की रचना होती है, तब मुख्य द्वार पर स्तम्भ का निर्माण किया जाता है, जो 'मानस्तम्भ' के नाम से प्रसिद्ध है। इससे भी यह स्पष्ट है कि जैन-सस्कृति मे स्तम्भ का विशेष महत्त्व रहा है। इन तथ्यो के आधार पर यह प्रश्न

उठना स्वाभाविक है कि सिहमूर्त्तिवाले प्राचीन स्तम्भ परवर्त्ती कालो मे भ० महावीर की स्मृति में तो कही निर्मित नही किये गये थे, जिनपर वाद मे अशोक ने अपने अभिलेख उत्कीर्ण करा दिये हो ?

२. चाणक्य एव चन्द्रगुप्त मौर्य गुरु-शिष्य थे, यह ऐतिहासिक सत्य है। जैनसाहित्य के अनुसार, चन्द्रगुप्त ने अपने उत्तरार्द्ध जीवन मे जिन-दीक्षा ग्रहण की थी तथा मगध मे १२ वर्षों के दुष्काल के कारण वह आचार्य भद्रवाहु के साथ दक्षिण चला गया था। श्रवणवेलगोल के अनेक शिलालेख इसके प्रमाण हैं। इन प्रमाणों से चन्द्रगुप्त के शेष जीवन की तो जानकारी मिल जाती है कि वह अन्त समय में जैन साधु वन गया था। किन्तु, उसके राजनीतिक गुरु चाणक्य के उत्तरार्द्ध जीवन का निश्चित पता नही चलता। कही ऐसा तो नही है कि चाणक्य ने भी जिन-दीक्षा ग्रहण कर ली हो और अपना नाम परिवर्त्तित कर भद्रवाहु के नाम से प्रसिद्ध हो गया हो और उसके वाद वे दोनो गुरु-शिष्य दक्षिण भारत की ओर गये हो। मगध के राजनीतिक एव सास्कृतिक इतिहास की परिपूर्णता के लिए इस समस्या के समाधान का प्रयत्न होना चाहिए।

३ प्राच्य भारतीय इतिहास के निर्माण में सम्राट् खारवेल के हाथीगुम्फा-शिलालेख का विशेष महत्त्व है। ई० पू० प्रथम शती की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एव धार्मिक घटनाओ की तो वह प्रामाणिक सामग्री प्रस्तुत करता ही है, साथ ही तत्कालीन भाषा की दृष्टि से भी वह शिलालेख विशिष्ट कोटि का है। शिलालेख से यह स्पष्ट है कि खारवेल जैन था, फिर भी यह आश्चर्य का विषय है कि दिगम्वर या श्वेताम्वर-साहित्य मे उसका उल्लेख तक नही मिलता। इसका कारण कही यह तो नही कि वह दिगम्वर या श्वेताम्वर-सम्प्रदाय के अतिरिक्त किसी अन्य जैनसम्प्रदाय का अनुयायी रहा हो ? कलिग-देश की धार्मिक परिस्थितियो को ध्यान मे रखते हुए इस विषय का अध्ययन होना अत्यावश्यक है।

ये प्रश्न वड़े जटिल हैं, किन्तु भारतीय इतिहास की सर्वांगीणता की दृष्टि से इनका समाधान अत्यावश्यक है। मैं उपस्थित विद्वानो से अनुरोध करूँगा कि वे इन प्रश्नो पर गम्भीर विचार तथा उनके समाधान का प्रयत्न करे।

अभिनव प्रकाशनों की प्रगति के लिए कतिपय सुझाव

अभिनव प्रकाशनों की पूर्वोक्त दीर्घ शृखला से प्राकृत-भाषा एव जैनविद्या का भविष्य उज्ज्वल प्रतीत होता है, किन्तु इसकी प्रगति मे यथानिर्दिष्ट सुझावो से और भी तीव्रता लाई जा सकती है :

१ प्रत्येक शिक्षा-सस्था में विद्यालय, महाविद्यालय एव विश्वविद्यालय-स्तर पर प्राकृत-भाषा एव जैनविद्या के अध्ययन (Study) की यथासम्भव व्यवस्था की

जाय तथा पाठ्यक्रम इस ढग का तैयार किया जाय कि जिसमे प्राचीन एव मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओ का वैज्ञानिक अध्ययन कराया जा सके ।

२ भारतीय विद्या का प्रमुख अग होने के कारण प्राकृत-भाषा एव जैन-विद्या-सम्बन्धी कम-से-कम १०० अको का एक प्रश्नपत्र सस्कृत, पालि, हिन्दी तथा अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओ और दर्शन, तुलनात्मक धर्म, सस्कृति, प्राचीन इतिहास एव पुरातत्व आदि के पाठ्यक्रम मे अनिवार्य रूप से पढाया जाना चाहिए तथा इन विभागो में प्राकृत एव जैनविद्या के १–१ प्राध्यापक की नियुक्ति होनी चाहिए। इससे विषय के विधिपूर्वक अध्ययन की व्यवस्था तो होगी ही, साथ ही अन्तर्विभागीय पारस्परिक, तुलनात्मक एव समीक्षात्मक अध्ययन एव शोध का भी सुअवसर मिल सकेगा ।

३ जैनकवियो ने विभिन्न कालो मे अन्य भारतीय-भाषाओ के अतिरिक्त सस्कृत एव हिन्दी मे भी विविध विधाओवाले अनेक स्तरीय जैनकाव्यो की रचनाएँ की हैं। धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्य, चन्द्रप्रभचरितम्, जीवन्धरचम्पू, गद्यचिन्तामणि, मैथिली कल्याण-नाटक, पार्श्वाभ्युदय-काव्य, काव्यानुशासन, प्रबन्धचिन्तामणि, बाहुबलिचरितम्, छत्रचूडामणि, वचनदूतम्, समयसार-नाटक, अर्द्धकथानक, पार्श्व-चरित (भूधरदास-कृत) आदि ऐसे ग्रन्थ हैं, जिनकी देश-विदेश के प्राच्यविद्याविदो ने मुक्तकण्ठ से प्रशसा की है । विश्वविद्यालयो मे इनके पठन-पाठन की व्यवस्था होनी चाहिए ।

४ सस्कृत-प्राकृत-अपभ्रश एव हिन्दी के स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में प्राचीन हस्तप्रतियो के अध्ययन एव सम्पादनकला-विषयक दो प्रश्नपत्र अनिवार्य होने चाहिए एक सैद्धान्तिक तथा दूसरा प्रायोगिक, जिनसे छात्रो को हस्तप्रतियो की महत्ता तथा उपयोगिता का ज्ञान हो सके । प्राच्य शास्त्र-भाण्डारो के सूचीकरण, सरक्षण एव मूल्याकन के कार्यों मे ऐसे प्रशिक्षित छात्र उपयोगी सिद्ध होगे, इसमे सन्देह नही । इस दिशा में विश्वविद्यालयो को तथा उनकी अनुशसा पर शोध-सस्थानो तथा छात्र-वृत्ति-निधियो को एतद्विषयक कुछ शोध-छात्रवृत्तियो की उदारतापूर्वक व्यवस्था करनी चाहिए, क्योकि अन्य शोधकार्यों की अपेक्षा यह कार्य कई दृष्टियो से विशेष महत्त्वपूर्ण है ।

५ कन्नड एव तमिल-लिपि के उपलब्ध सभी जैनग्रन्थो की सूचियाँ एव उनका सक्षिप्त परिचय हिन्दी एव अँगरेजी मे प्रकाशित होना चाहिए, जिससे उस साहित्य का अध्ययन-क्षेत्र विस्तृत हो सके । हिन्दी और अँगरेजी के साथ-साथ कन्नड एव तमिल-भाषा एव लिपियो के अध्ययन की व्यवस्था प्रत्येक विश्वविद्यालय मे होनी चाहिए, इससे उत्तर एव दक्षिण के पारस्परिक साहित्यिक सहयोग की सम्भावनाओ को अधिक बल मिलेगा ।

६ संस्कृत-नाटकों में प्रयुक्त प्राकृत-भाषाएँ इस तथ्य के पुष्ट प्रमाण हैं कि प्रारम्भ से ही संस्कृत एवं प्राकृत-भाषा का एक साथ समानान्तर अध्ययन किया-कराया जाता था। जहाँ ये भाषाएँ मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं के प्रयोग की एक विशिष्ट शैली की द्योतक हैं, वहीं भाषाविज्ञान की दृष्टि से भी उनका अपना महत्त्व है। किन्तु, यह दुःख का विषय है कि आजकल उन मूल प्राकृत-अंशों का अध्ययन संस्कृत-छाया के माध्यम से किया जा रहा है और इस प्रकार मूल प्राकृत-भाषा के पठन-पाठन की उपेक्षा की जा रही है। जिस प्रकार, हम वैदिक सूक्तों का लौकिक संस्कृत में रूपान्तर कर वैदिक सूक्तों की उपेक्षा नहीं कर सकते, उसी प्रकार प्राकृत-अंशों का भी संस्कृत-रूपान्तर कर प्राकृतों की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए।

७ प्राकृत-भाषा एवं जैनविद्या के विविध पक्षों पर समय-समय लघु-काय पुस्तकमाला (Monographs) के लिखने की व्यवस्था होनी चाहिए। पूना के दक्षिण-कॉलेज ने इस दिशा में अच्छे कार्य किये हैं। अन्य महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय भी अपने-अपने, भाषा, इतिहास एवं संस्कृति, पुरातत्त्व, धर्म एवं दर्शन-विभागों के माध्यम से इस कार्य को करा सकते हैं।

८ प्राकृत-भाषा को अधिक लोकप्रिय बनाने तथा उसके प्रचार-प्रसार के लिए यह आवश्यक है कि उसे केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारों की प्रतियोगिता-परीक्षाओं तथा सेकेण्डरी बोर्ड की परीक्षाओं में अनिवार्य अथवा संस्कृत, पालि, उर्दू एवं फ़ारसी के समान ही एक वैकल्पिक विषय के रूप में स्वीकृत किया जाय।

९ प्रत्येक महाविद्यालय, विश्वविद्यालय, शोध-संस्थान एवं पुरातत्त्व-विभाग के ग्रन्थालयों को प्रेरणा दी जाय कि वे प्राकृत एवं जैनविद्या-सम्बन्धी साहित्य के क्रय के लिए प्रयत्नशील रहें। जैनविद्या के प्रकाशकों को प्रोत्साहित करने के लिए यह कार्य आवश्यक है।

१० शौरसेनी-प्राकृत-साहित्य जैनदर्शन एवं कर्म-सिद्धान्त की दृष्टि से तो महत्त्वपूर्ण है ही, प्राचीन भाषा, साहित्यिक शैली, संस्कृति तथा जैन-गणित, भूगोल एवं खगोल-विद्या की दृष्टि से भी उसका विशेष महत्त्व है। तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक पद्धति से इस विषय पर शोध कार्य करना-कराना चाहिए।

११ शोधेच्छुओं के सम्मुख शोध-विषय-निर्वाचन की बड़ी जटिल समस्या रहती है। क्या ही अच्छा हो कि समय-समय शोध-विषय की सूची आवश्यक सन्दर्भ-सामग्री, सहायक ग्रन्थसूची एवं आवश्यक टिप्पणियों के साथ प्रकाशित होती रहे। विश्वविद्यालय एवं साधन-सम्पन्न शोध-संस्थान तथा प्रकाशन-संस्थाएँ इस दिशा में अच्छा कार्य कर सकती हैं।

१२. विश्वविद्यालयों एवं शोध-निर्देशकों को चाहिए कि वे घटिया स्तर के शोधकार्यों को किसी भी प्रकार का बढ़ावा न दें।

१३ प्राकृत-भाषा एवं जैनविद्या-सम्बन्धी शोधकार्यों के लिए विश्वविद्यालय तथा केन्द्रीय विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग की ओर से विशेष शोध-छात्रवृत्तियों एवं सामयिक अनुदानों की व्यवस्था होनी चाहिए।

१४ भारतीय एवं विदेशी शिक्षा एवं शोध-संस्थानों में प्राकृत-भाषा एवं जैनविद्या पर जो भी शोधकार्य हो रहे हैं, समय-समय उनकी विवरणात्मक सूचियाँ प्रसारित होनी चाहिए, जिससे शोध के क्षेत्र में अनावश्यक पुनरावृत्ति को रोका जा सके। इस दिशा में विगत सन् १९६८-६९ ई० में भारतीय ज्ञानपीठ ने ज्ञानपीठ-पत्रिका (अक्टूबर, १९६८ ई० तथा अक्टूबर-नवम्बर, १९६९ ई० के अंक) अध्ययन के माध्यम से तथा Jainological Research Society ने अपने Bhagvan Mahabir and his Heritage (Dec. 30-31, 1973) नामक बुलेटिन के माध्यम से उक्त प्रकार की सामग्री का अच्छा संकलन एवं प्रसार किया था। सचमुच ही ये प्रयास सराहनीय हैं। इस प्रकार की बुलेटिन प्रत्येक वर्ष निकाले जाने की आवश्यकता है।

१५ ऐसे शोध-प्रबन्धों का प्रकाशन किया जाय, जो मौलिक एवं श्रेष्ठ हैं तथा किन्हीं अज्ञात कारणों से उनका प्रकाशन नहीं हो पा रहा है।

१६ अर्द्धमागधी-आगमों पर लिखित टीका-साहित्य पूर्व-मध्यकालीन भारतीय संस्कृति एवं इतिहास का प्रामाणिक दस्तावेज है। उसके दुर्लभ रहने के कारण शोधकार्यों में बड़ी कठिनाइयाँ आ रही हैं, अतः उसका प्रकाशन यथाशीघ्र होना चाहिए।

१७ भारतीय एवं एशियाई कथा-साहित्य में जैनकथा-साहित्य का गुण एवं परिमाण दोनों ही दृष्टियों से अपना विशेष महत्त्व है। उनके पारस्परिक आदान-प्रदान के तुलनात्मक अध्ययन से अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रकाशित हो सकते हैं। अतः, एतदर्थ जैनकथाओं-सम्बन्धी एक ऐसे कोष के निर्माण की आवश्यकता है, जिसमें कथाओं का संक्षिप्त साराश, उनके मूलस्रोत, जैनेतर कथाओं के साथ उनकी यथासम्भव तुलना तथा मूल अभिप्रायों का विश्लेषण प्रस्तुत किया जाय।

१८ हस्तलिखित अप्रकाशित ग्रन्थों की विवरणात्मक सूचियाँ तैयार कराई जायँ। इस दिशा में इधर कुछ कार्य हुआ है, जिससे अनेक नवीन ग्रन्थों की जानकारी प्राप्त हुई है, फिर भी लाखों ग्रन्थ अभी अछूते ही पड़े हैं। क्या ही अच्छा हो कि भारतीय भाषाओं के प्राध्यापक अपने निकटवर्ती प्राचीन शास्त्र-भाण्डारों में जीर्ण-शीर्ण हो रहे इन हस्तलिखित ग्रन्थों की सूचियाँ तैयार करें तथा शोधपत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से उनका प्रकाशन करें। असम्भव नहीं कि गाथा-

सप्तशती, कर्पूरमजरी, धवलकृत हरिवशपुराण आदि मे सन्दर्भित अनेक पूर्ववर्ती अनुपलब्ध ग्रन्थ एव ग्रन्थकारो की जानकारी हमे उनसे प्राप्त हो सके।

१६ अर्द्धमागधी एव शौरसेनी-प्राकृतागमो के प्रामाणिक सस्करण प्रकाशित हो। उनका हिन्दी, कन्नड, तमिल के साथ-साथ विश्व की अन्य सुप्रसिद्ध भाषाओं—अँगरेजी, जर्मन अरबी, फारसी, फ्रेंच, जापानी, रूसी एव दक्षिण-पूर्व एशियाई भाषाओ मे भी अनुवाद होना चाहिए, जिससे उन-उन भाषाभाषियो को उनके तुलनात्मक अध्ययन का अवसर मिल सके और इस प्रकार प्राकृत-भाषा एव जैन-विद्या का अध्ययन-क्षेत्र विस्तृत हो सके।

२० जैनकवियो ने मूल ग्रन्थ के आदि एव अन्त मे दीर्घ प्रशस्तियाँ लिखी हैं। किन्ही-किन्ही ग्रन्थो मे लिपिकार-प्रशस्तियाँ भी उपलब्ध हैं। इनमे तत्कालीन इतिहास, सस्कृति, पूर्ववर्ती ग्रन्थ एव ग्रन्थकार, राजवश-परम्पराएँ, आचार्य एवं भट्टारक-परम्परा की चर्चाएँ रहती हैं, जो इतिहास-निर्माण मे विशेष रूप से सहायक होती हैं। अत, इस प्रशस्ति-साहित्य का कालक्रम से सकलन, सम्पादन, अनुवाद, तुलनात्मक अध्ययन एव प्रकाशन होना चाहिए। शोध के क्षेत्र मे ऐसे ग्रन्थ एक प्रामाणिक सन्दर्भ-ग्रन्थ के रूप मे सहायक होगे।

२१ संस्कृत, प्राकृत एव अपभ्रश के जिन ग्रन्थो मे प्राकृत-भाषा एव जैन-विद्या के अज्ञात अथवा अप्रकाशित पूर्ववर्ती ग्रन्थ एवं ग्रन्थकारो के उल्लेख मिलते हैं, उनकी सन्दर्भ-सहित एक सूची प्रकाशित-प्रचारित की जाय तथा प्राचीन शास्त्र-भाण्डारो मे उनकी खोज-बीन की जाय। यह कार्य यद्यपि कठिन है, तथापि साहित्यिक इतिहास की दृष्टि से वह अत्यावश्यक है।

२२ जैनसाहित्य के जिन अनुपलब्ध प्राचीन ग्रन्थो के उद्धरण अन्य प्रकाशित ग्रन्थो मे प्राप्त होते हैं, उनका विधिपूर्वक संग्रह किया जाय और उनका 'Fragments from Dignaga' नामक ग्रन्थ (G O S) के समान प्रकाशन किया जाय। तत्पश्चात् उत्तरोत्तर उपलब्ध सामग्री से रिक्त स्थानो की क्रमश पूर्ति की जाय।

२३ कतिपय ग्रन्थो की टीकाएँ तो मिलती हैं, किन्तु मूल ग्रन्थ लुप्त, विलुप्त या अनुपलब्ध हैं, अतएव उनकी टीकाओ के आधार पर मूल ग्रन्थो की सरचना के प्रयास किये जायँ। इस दिशा मे स्वर्गीय डॉ० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य द्वारा सम्पादित 'सिद्धि-विनिश्चय' नामक ग्रन्थ आदर्श माना जाय। यह ग्रन्थ मूलत नष्ट हो जाने के कारण उसकी एकमात्र उपलब्ध टीका के आधार पर ही तैयार किया गया था। यह ग्रन्थ भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली से प्रकाशित है।

२४ जैनविद्या-सम्बन्धी सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश एव देशज भाषाओ के साहित्य मे अनेक ऐसे पारिभाषिक शब्द आये हैं, जो प्रकाशित कोष-ग्रन्थों मे या तो

स्थान नहीं पा सके अथवा कुछ शब्दों को ग्रहण किया भी गया, तो उनके अर्थ कुछ भ्रान्त धारणा उत्पन्न करते हैं। वस्तुतः, ऐसे पारिभाषिक शब्दों का एक प्रामाणिक कोष तैयार होना चाहिए।

२५ इसी प्रकार Encylopeadia of Buddhism के समान Encyclopeadia of Jainism भी तैयार होना चाहिए, जिसमे Jainology के विविध पक्षों का प्रामाणिक अध्ययन प्रस्तुत किया जाय। यह कार्य विशाल होने के साथ-साथ धैर्य-साध्य, समयसाध्य एवं व्ययसाध्य है। भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, एल्० डी० इन्स्टीच्यूट, अहमदाबाद जैसी संस्थाएँ सम्मिलित होकर अथवा स्वतन्त्र रूपेण यदि चाहें, तो इस क्षेत्र मे अच्छा कार्य कर सकती हैं।

२६ प्राकृत-भाषा एव जैनविद्या के क्षेत्र मे कार्यरत उच्च श्रेणी के विद्वानो का केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारो तथा शिक्षा एव शोध-संस्थानों द्वारा सम्मान होना चाहिए।

२७ केन्द्रीय एव प्रान्तीय सरकारो एवं अन्य संस्थाओ की साहित्यिक-प्रतियोगिताओ मे प्राकृत-भाषा एव जैनविद्या-सम्बन्धी एक विषय भी रहना चाहिए तथा वर्ष की सर्वश्रेष्ठ कृति पर पुरस्कार मिलना चाहिए।

२८ यू० जी० सी० के आर्थिक सहयोग से शिवाजी-विश्वविद्यालय, कोल्हापुर (२२-२५ मई, १९६८ ई०) तथा पूना वि० वि० (२३-२७ जून, सन् १९६९ ई०) मे आयोजित प्राकृत-सेमिनारो मे पारित प्रस्तावो के अनुसार कार्य किये जावें और उनकी पूर्ति-हेतु यू० जी० सी० से आवश्यक आर्थिक अनुदान माँगा जाय।

प्राकृत एव जैनविद्या के क्षेत्र मे विगत तीन-चार वर्षो मे जो प्रगति हुई है, उसकी चर्चा हमने यहाँ प्रस्तुत की। देश-विदेश के प्रसिद्ध प्राच्यविदो एवं संस्थानो से यथासम्भव सम्पर्क तथा उनके द्वारा प्रेषित सामग्री एव अन्य पत्र-पत्रिकाओ की सूचनाओ के आधार पर ही हमने यह प्रगति-विवरण उपस्थित किया है, किन्तु उसकी सर्वांगीणता पर हमारा कोई दावा नही है। बहुत सम्भव है कि अनेक महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ छूट भी गई हों। उनके लिए मैं सादर क्षमाप्रार्थी हूँ। जैसा कि मैंने पूर्व मे कहा है कि भ० महावीर का २५००वाँ निर्वाण समारोह भी संयोग से इसी सत्र मे प्रारम्भ एव समाप्त हुआ। उस उपलक्ष्य मे जैनसाहित्य-प्रकाशन तथा अन्य इतने अधिक रचनात्मक कार्यक्रम हुए कि उन सबका एक साथ क्रमबद्ध सर्वेक्षण, समीक्षण एव प्रस्तुतीकरण सम्भव नहीं। आवश्यक उपलब्ध सामग्री को सक्षेप मे प्रस्तुत करने पर भी यह पर्याप्त विस्तृत हो गई। फिर भी, आपने इसे बड़े धैर्यपूर्वक सुना, इसे मैं प्राकृत एव जैनविद्या-विभाग के लिए उत्कृष्ट उपलब्धि मानता हुआ आपके प्रति बार-बार अपनी विनम्र कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

मुद्रक : मोहन प्रेस, पटना-८०००४